अरब, इस्लाम से पहले

- पृथ्वी और जातियां
- राज्य और नीतियां
- दीन और सामूहिकता

अरब, स्थिति और जातियां

नबी सल्ल० की सीरत को, सच तो यह है कि रब के उस पैग़ाम का व्यावहारिक प्रतिबिम्ब समझा जा सकता है, जिसे अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने तमाम इंसानों के सामने पेश किया था, और जिसके ज़रिए इंसान को अंधेरों से निकाल कर रोशनी में और बन्दों की बन्दगी से निकाल कर अल्लाह की बन्दगी में दाख़िल कर दिया था। चूंकि इस पाक सीरत का पूर्ण चित्र सामने लाया नहीं जा सकता जब तक कि रब के उस पैग़ाम के आने से पहले के हालात और बाद के हालात की तुलना न कर ली जाए, इसलिए असल वार्ता से पहले इस अध्याय में इस्लाम से पहले की अरब जातियों और उनके विकास की स्थिति बताते हुए उन हालात का चित्रण किया जा रहा है, जिनमें अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम भेजे गये थे।

अरब की स्थिति

अरब शब्द का शाब्दिक अर्थ है मरुस्थल और बिना किसी हरियाली का भू-भाग। पुराने समय से यह शब्द अरब प्रायद्वीप और उसमें बसने वाली जातियों के लिए बोला जा रहा है।

अरब के पश्चिम में लाल सागर और सीना प्रायद्वीप है। पूरब में अरब की खाड़ी और दक्षिणी इराक़ का एक बड़ा भाग है। दक्षिण में अरब सागर है जो वास्तव में हिंद महासागर का फैलाव है। उत्तर में सीरिया और कुछ उत्तरी इराक़ है। इनमें से कुछ सीमाओं के बारे में मतभेद भी है। कुल क्षेत्रफल का अन्दाज़ा दस लाख से तेरह लाख वर्ग मील तक किया गया है।

अरब प्रायद्वीप प्राकृतिक और भौगोलिक हैसियत से बड़ा महत्व रखता है। भीतरी तौर पर यह हर चार ओर से मरुस्थल से घिरा हुआ है, जिसके कारण यह एक ऐसा सुरक्षित क़िला बन गया है कि बाहरी जातियों के लिए इस पर क़ब्ज़ा करना और अपना प्रभाव फैलाना अति कठिन है। यही वजह है कि अरब प्रायद्वीप के मध्यवर्ती क्षेत्र के रहने वाले पुराने समय से अपने तमाम मामलों में पूरी तरह स्वतंत्र और स्वशासी दिखाई पड़ते हैं, हालांकि ये ऐसी दो महान शक्तियों के पड़ोसी थे कि अगर यह ठोस प्राकृतिक रुकावट न होती तो इनके हमले रोक लेना अरब निवासियों के बस की बात न थी।

बाहरी तौर पर अरब प्रायद्वीप पुरानी दुनिया के तमाम मालूम महाद्वीपों के बीचों-बीच स्थित है और भू-भाग और समुद्र दोनों रास्तों से उनके साथ जुड़ा

हुआ है। उनका उत्तरी पश्चिमी कोना अफ़्रीक़ा महाद्वीप के लिए प्रवेश-द्वार है। उत्तरी पूर्वी कोना यूरोप की कुंजी है। पूर्वी कोना ईरान, मध्य एशिया और पूरब के द्वार खोलता है और भारत और चीन तक पहुंचाता है। इसी तरह हर महाद्वीप समुद्र के रास्ते से भी अरब प्रायद्वीप से जुड़ा हुआ है और उनके जहाज़ अरब बन्दरगाहों में प्रत्यक्ष रूप से आकर ठहरते हैं।

इस भौगोलिक स्थिति की वजह से अरब प्रायद्वीप के उत्तरी और दक्षिणी कोने विभिन्न जातियों के गढ़ और व्यापार, कला और धर्मों के आदान-प्रदान का केन्द्र रह चुके हैं।

अरब जातियां

इतिहासकारों ने नस्ली दृष्टि से अरब जातियों को तीन भागों में विभाजित किया है—

1. **अरब बाइदा**—यानी वे प्राचीन अरब क़बीले और जातियां, जो बिल्कुल लुप्त हो गईं और उनसे सम्बन्धित ज़रूरी जानकारियां भी अब मौजूद नहीं, जैसे आद, समूद, तस्म, जदीस, अमालिक़ा अमीम, जरहम, हुज़ूरा विहार, उबैल, जासम, हज़र मौत वग़ैरह।

2. **अरब आरिबा**—यानी वे अरब क़बीले, जो यारुब बिन यशजब बिन क़हतान की नस्ल से हैं। इन्हें क़हतानी अरब कहा जाता है।

3. **अरब मुस्तारबा**—यानी वे अरब क़बीले जो हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम की नस्ल से हैं। इन्हें अदनानी अरब कहा जाता है।

अरब आरिबा यानी क़हतानी अरब का मूल स्थान यमन था। यहीं इनके वंश और क़बीले विभिन्न शाखाओं में उपजे, फैले और बढ़े। इनमें से दो क़बीलों ने बड़ी ख्याति प्राप्त की।

(क) हिमयर—जिसकी प्रसिद्ध शाखाएं ज़ैदुल जम्हूर, क़ुज़ाआ और सकासिक हैं।

(ख) कहलान—जिसकी प्रसिद्ध शाखाएं हमदान, अन्मार, तै, मज़हिज, किन्दा, लख़्म, जुज़ाम, अज़्द, औस, ख़ज़रज और जफ़ना-सन्तान हैं, जिन्होंने आगे चलकर शाम प्रदेश के आस-पास बादशाही क़ायम की और आले ग़स्सान के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आम कहलानी क़बीलों ने बाद में यमन छोड़ दिया और अरब प्रायद्वीप के अलग-अलग हिस्सों में फैल गए। उनके देश छोड़ने की सामान्य घटना सैले इरम

से कुछ पहले उस वक़्त घटी, जब रूमियों ने मिस्र व शाम (सीरिया) पर क़ब्ज़ा करके यमन वालों के व्यापारिक समुद्री रास्ते पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया और थल मार्ग की सुविधाएं समाप्त करके अपना दबाव इतना बढ़ा लिया कि कह्लानियों का व्यापार नष्ट होकर रह गया। एक कथन यह भी है कि उन्होंने सैले इरम के बाद उस समय देश-परित्याग किया, जब व्यापार की तबाही के अलावा जीवन के दूसरे साधन भी जवाब दे गए। क़ुरआन से भी इसकी पुष्टि होती है।

कुछ असंभव नहीं कि कह्लानी और हिमयरी परिवारों में संघर्ष भी रहा हो और यह भी कह्लानियों के देश छोड़ने का एक प्रभावी कारण बना हो। इसका इशारा इससे मिलता है कि कह्लानी क़बीलों ने तो देश छोड़ दिया, लेकिन हिमयरी क़बीले अपनी जगह बाक़ी रहे।

जिन कह्लानी क़बीलों ने देश छोड़ा, उनकी चार क़िस्में की जा सकती हैं—

1. अज़्द

इन्होंने अपने सरदार इम्रान बिन अम्र मज़ीक़िया के मश्विरे पर वतन छोड़ा। पहले तो ये यमन ही में एक जगह से दूसरी जगह आते-जाते रहे और हालात का पता लगाने के लिए खोजियों को भेजते रहे, लेकिन अन्त में उत्तर का रुख़ किया और फिर विभिन्न शाखाएं घूमती-घुमाती अनेक जगहों पर हमेशा के लिए बस गईं। सविस्तार विवेचन इस तरह है—

सालबा बिन अम्र—इसने सबसे पहले हिजाज़ का रुख़ किया और सालबीया और ज़ीक़ार के बीच में बस गए। जब इसकी सन्तान बड़ी हो गई और परिवार मज़बूत हो गया तो मदीना की ओर कूच किया और उसी को अपना वतन बना लिया। इसी सालबा की नस्ल से औस और ख़ज़रज क़बीले हैं, जो सालबा के बेटे हारिसा की सन्तान हैं।

हारिसा बिन अम्र—यानी ख़ुज़ाआ और उसकी सन्तान। ये लोग पहले हिजाज़ भू-भाग में घूमते-घामते मर्रज़्ज़हरान में ठहरे, फिर हरम पर धावा बोल दिया और बनू जुरहुम को निकाल कर ख़ुद मक्का में रहने-सहने लगे।

इम्रान बिन अम्र—इसने और इसकी सन्तान ने अमान में रहना शुरू किया, इसलिए ये लोग अज़्दे अमान कहलाते हैं।

नस्र बिन अज़्द—इससे ताल्लुक़ रखने वाले क़बीलों ने तिहामा में रहना शुरू किया। ये लोग अज़्दे शनूअः कहलाते हैं।

जुफ़्ना बिन अम्र—इसने शाम देश का रुख़ किया और अपनी सन्तान सहित वहीं रहने-सहने लगा। यही व्यक्ति ग़स्सानी बादशाहों का मूल पुरखा है। इन्हें

आले ग़स्सान इसलिए कहा जाता है कि इन लोगों ने शाम देश जाने से पहले हिजाज़ में ग़स्सान नामक एक चश्मे पर कुछ दिनों वास किया था।

दूसरे छोटे परिवार, जैसे काब बिन अम्र, हारिस बिन अम्र और औफ़ बिन अम्र ने हिजाज़ और शाम (सीरिया) हिजरत करने वाले क़बीलों का साथ पकड़ा।

देश-परित्याग करने वालों का पहला शासक मालिक बिन फ़हम तनूख़ी था जो आले-क़हतान से था। यह अनबार में या अंबार के क़रीब रहता था। इसके बाद एक रिवायत के अनुसार इसका भाई अम्र बिन फ़हम और एक दूसरी रिवायत के अनुसार जुज़ैमा बिन मालिक बिन फ़हम, जिसकी उपाधि अबरश और वज़ाह था, उसकी जगह शासक हुआ।

2. लख़्म व जुज़ाम

इन्होंने उत्तर पूर्व का रुख़ किया। इन्हीं लख़्मियों में नस्र बिन रबीआ था, जो हियरा के आले मुन्ज़िर बादशाहों का मूल पुरखा है।

3. बनूतै

इस क़बीले ने बनू अज़्द के देश छोड़ देने के बाद उत्तर का रुख़ किया और अजा और सलमा नामक दो पहाड़ियों के आस-पास स्थाई रूप से बस गये, यहाँ तक कि दोनों पहाड़ियां क़बीला तै की निस्बत से मशहूर हो गईं।

4. किन्दा

ये लोग पहले बहरैन—वर्तमान अल-अह्सा—में बसे, लेकिन विवश होकर वहां से हज़रमौत चले गये, मगर वहां भी अमान न मिली और आख़िरकार नज्द में डेरा डालना पड़ा। यहां उन लोगों ने एक ज़ोरदार हुकूमत की बुनियाद डाली, पर यह हुकूमत स्थाई न साबित हो सकी और उसके चिह्न जल्द ही मिट गये।

कहलान के अलावा हिमयर का भी केवल एक क़बीला क़ुज़ाआ ऐसा है—और उसके हिमयरी होने में भी मतभेद है—जिसने यमन देश छोड़कर के इराक़ की सीमाओं में बादियतुस्समावः के अन्दर रहना-सहना शुरू किया।[1]

---

1. इन क़बीलों की और इनके देश छोड़ने की विस्तृत जानकारी के लिए देखिए, नसब माद वलयमनुल कबीर, जमहरतुन्नसब, अल-अक़्दुल फ़रीद, क़लाइदुल जमान, निहायतुल अदब, तारीख़े इब्ने ख़ल्लदून, सबहकुज़्ज़हब और अन्साब की दूसरी किताबें, साथ ही तारीख़ुल अरब क़ब्लल इस्लाम पर लिखी गई किताबें। देश छोड़ने की इन घटनाओं के समय और कारणों के निर्धारण में ऐतिहासिक स्रोतों के मामले में बड़ा

अरब मुस्तारबा

इनके मूल पुरखे सैयिदिना इब्राहीम अलैहिस्सलाम मूलतः इराक़ के एक नगर उर के रहने वाले थे। यह नगर फ़रात नदी के पश्चिमी तट पर कूफ़ा के क़रीब स्थित था। इसकी खुदाई के दौरान जो शिलालेख मिले हैं, उनसे उस नगर के बारे में बहुत-सी बातें सामने आई हैं और हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के परिवार के कुछ विवरण और देशवासियों की धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों पर से भी परदा उठता है।

यह मालूम है कि हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम यहां से हिजरत करके हर्रान नगर तशरीफ़ ले गए थे और फिर वहां से फ़लस्तीन जाकर उसी देश को अपनी पैग़म्बराना गतिविधियों का केन्द्र बना लिया था और दावत व तब्लीग़ (प्रचार-प्रसार) के लिए यहीं से देश के भीतर और बाहर संघर्षरत रहा करते थे। एक बार आप मिस्र तशरीफ़ ले गए। फ़िरऔन ने आपकी बीवी हज़रत सारा के बारे में सुना, तो उनके बारे में उसकी नीयत बुरी हो गई और उन्हें अपने दरबार में बुरे इरादे से बुलाया, लेकिन अल्लाह ने हज़रत सारा की दुआ के नतीजे में अनदेखे रूप से फ़िरऔन की ऐसी पकड़ की कि वह हाथ-पांव मारने और फेंकने लगा। फिर हज़रत सारा की दुआ से ठीक हो गया। तीन बार की ऐसी दशा से उसे समझ में आ गया कि हज़रत सारा अल्लाह की बहुत ख़ास और क़रीबी बन्दी हैं और वह हज़रत सारा की इस विशेषता से इतना प्रभावित हुआ कि हज़रत हाजरा[1] को उनकी सेवा में दे दिया। फिर हज़रत सारा ने हज़रत हाजरा को हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की पत्नी के रूप में पेश कर दिया।[2]

मतभेद है। हमने विभिन्न पहलुओं पर विचार करके, जो बात ज़्यादा उचित जानी, वही लिख दी है।

1. मशहूर है कि हज़रत हाजरा लौंडी थीं, लेकिन अल्लामा मंसूरपुरी ने सविस्तार शोध-कार्य करके स्वयं अह्ले किताब के हवाले से यह सिद्ध किया है कि वह लौंडी नहीं, बल्कि आज़ाद थीं और फ़िरऔन की बेटी थीं। देखिए 'रहमतुल्लिल आलमीन' 2/36-37। इब्ने ख़ल्लदून, अम्र बिन आस और मिस्रियों की एक वार्त्ता का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि मिस्रियों ने उनसे कहा कि हाजरा हमारे बादशाहों में से एक बादशाह की औरत थीं। हमारे और ऐन शम्स वालों के दर्मियान कई लड़ाइयां हुईं। कुछ लड़ाइयों में उन्हें विजय मिली और उन्होंने बादशाह को क़त्ल कर दिया और हाजरा को क़ैद कर लिया। यहीं से वह तुम्हारे पुरखे हज़रत इब्राहीम तक पहुंचीं। (तारीख़े इब्ने ख़ल्लदून 2/1/77)
2. वही, 2/34, घटना के विवरण के लिए देखिए सहीह बुख़ारी 1/484,

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम, हज़रत सारा और हज़रत हाजरा को साथ लेकर फ़लस्तीन वापस तशरीफ़ लाए, फिर अल्लाह ने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को हाजरा अलैहस्सलाम के पेट से एक बेटा—इस्माईल—अता फ़रमाया, लेकिन इस पर हज़रत सारा को जो निःसन्तान थीं, बड़ी शर्म आई और उन्होंने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को मजबूर किया कि हज़रत हाजरा को उनके नए बच्चे सहित देश निकाला दे दें। हालात ने ऐसा रुख़ अपनाया कि उन्हें हज़रत सारा की बात माननी पड़ी और हज़रत हाजरा और बच्चे हज़रत इस्माईल को साथ लेकर हिजाज़ तशरीफ़ ले गए और वहां एक चटयल घाटी में बैतुल्लाह शरीफ़ के क़रीब ठहरा दिया। उस वक़्त बैतुल्लाह शरीफ़ न था, सिर्फ़ टीले की तरह उभरी हुई ज़मीन थी। बाढ़ आती थी तो पानी दाहिने-बाएं से कतरा कर निकल जाता था। वहीं मस्जिदे हराम के ऊपरी भाग में ज़मज़म के पास एक बहुत बड़ा पेड़ था। आपने उसी पेड़ के पास हज़रत हाजरा और हज़रत इस्माईल अलै० को छोड़ा था। उस वक़्त न मक्का में पानी था, न आदम, न आदमज़ाद। इसलिए हज़रत इब्राहीम ने एक तोशेदान में खजूर और एक मश्केज़े में पानी रख दिया। इसके बाद फ़लस्तीन वापस चले गए, लेकिन कुछ ही दिनों में खजूर और पानी ख़त्म हो गया और बड़ी कठिन घड़ी का सामना करना पड़ा, पर ऐसी कठिन घड़ी में अल्लाह की मेहरबानी से ज़मज़म का सोता फूट पड़ा और एक मुद्दत तक के लिए रोज़ी का सामान और जीवन की पूंजी बन गया। ये बातें आम तौर से लोगों को मालूम हैं।[1]

कुछ दिनों के बाद यमन से एक क़बीला आया, जिसे इतिहास में जुरहुम द्वितीय कहा जाता है। यह क़बीला इस्माईल अलैहिस्सलाम की मां से इजाज़त लेकर मक्का में ठहर गया। कहा जाता है कि यह क़बीला पहले मक्का के आस-पास की घाटियों में ठहरा हुआ था। सहीह बुख़ारी में इतना स्पष्टीकरण मौजूद है कि (रहने के उद्देश्य से) ये लोग मक्का में हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम के आने के बाद और उनके जवान होने से पहले आये थे, लेकिन इस घाटी से उनका गुज़र इससे पहले भी हुआ करता था।[2]

हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम अपने छोड़े हुओं की निगरानी के लिए कभी-कभी मक्का तशरीफ़ लाया करते थे, लेकिन यह मालमू न हो सका कि इस तरह उनका कितनी बार आना हुआ, हां, ऐतिहासिक स्रोतों से उनका चार बार

1. देखिए सहीह बुख़ारी, किताबुल अंबिया, 1/474, 475
2. सहीह बुख़ारी 1/475

आना साबित है, जो इस तरह है—

1. क़ुरआन मजीद में बयान किया गया है कि अल्लाह ने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को सपने में दिखलाया कि वह अपने सुपुत्र (हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम) को ज़िब्ह कर रहे हैं। यह सपना एक प्रकार से अल्लाह का हुक्म था। बाप-बेटे दोनों जब अल्लाह के इस हुक्म को पूरा करने के लिए तैयार हो गये और बाप ने बेटे को माथे के बल लिटा दिया, तो अल्लाह ने पुकारा, ऐ इब्राहीम! तुमने सपने को सच कर दिखाया। हम अच्छे लोगों को इसी तरह बदला देते हैं। निश्चय ही यह खुली परीक्षा थी और अल्लाह ने उन्हें फ़िदए (प्रतिदान) में एक बड़ा, ज़िब्ह के लायक़ जीव अता कर दिया।[1]

बाइबिल की किताब पैदाइश में उल्लिखित है कि हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम, हज़रत इसहाक़ अलैहिस्सलाम से तेरह साल बड़े थे और क़ुरआन से मालूम होता है कि यह घटना हज़रत इसहाक़ अलैहिस्सलाम के जन्म से पहले घटी थी, क्योंकि पूरी घटना का उल्लेख कर चुकने के बाद हज़रत इसहाक़ अलैहिस्सलाम के जन्म की शुभ-सूचना दी गई है।

इस घटना से सिद्ध होता है कि हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम के जवान होने से पहले कम से कम एक बार हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने मक्के का सफ़र ज़रूर किया था। बाक़ी तीन सफ़रों का विवरण सहीह बुख़ारी की एक लंबी रिवायत में है, जो इब्ने अब्बास रज़ि० से मरफ़ूअन रिवायत की गई है।[2] उसका सार यह है—

2. हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम जब जवान हो गये, जुरहुम से अरबी सीख ली और उनकी निगाहों में जंचने लगे, तो उन लोगों ने अपने परिवार की एक महिला से आपका विवाह कर दिया। उसी बीच हज़रत हाजरा का देहान्त हो गया। उधर हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम को ख़्याल हुआ कि अपने छोड़े हुओं को देखना चाहिए। चुनांचे वह मक्का तशरीफ़ ले गये। लेकिन हज़रत इस्माईल से मुलाक़त न हुई। बहू से हालात मालूम किए। उसने तंगदस्ती की शिकायत की। आपने वसीयत की कि इस्माईल अलैहिस्सलाम आएं तो कहना, अपने दरवाज़े की चौखट बदल दें। इस वसीयत का मतलब हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम समझ गए। बीवी को तलाक़ दे दी और एक दूसरी औरत से शादी कर ली, जो अधिकतर इतिहासकारों के कथनानुसार जुरहुम के सरदार

---

1. सूरः साफ़्फ़ात : 103-107
2. सहीह बुख़ारी 1/475-476,

बुख़ारी का भी झुकाव है। चुनांचे अपनी सहीह में उन्होंने एक बाब (अध्याय) बांधा है, जिसका शीर्षक है 'इस्माईल अलैहिस्सलाम की ओर यमन की निस्बत' और इस पर कुछ हदीसों से तर्क जुटाया है। हाफ़िज़ इब्ने हजर ने उसकी व्याख्या में इस बात को प्रमुखता दी है कि क़ह्तान, नाबित बिन इस्माईल अलैहिस्सलाम की नस्ल से थे।[1]

क़ीदार बिन इस्माईल अलैहिस्सलाम की नस्ल मक्का ही में फलती-फूलती रही, यहां तक कि अदनान और फिर उनके बेटे मअद का ज़माना आ गया। अदनानी अरब का वंश-क्रम सही तौर पर यहीं तक सुरक्षित है।

अदनान नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के वंश-क्रम की 21वीं पीढ़ी पर पड़ते हैं। कुछ रिवायतों में बयान किया गया है कि आप जब अपने वंश-क्रम का उल्लेख करते तो अदनान पर पहुंच कर रुक जाते और आगे न बढ़ते, फ़रमाते कि वंश-क्रम के विशेषज्ञ ग़लत कहते हैं।[2] मगर विद्वानों का एक गिरोह कहता है कि अदनान से आगे भी वंश-क्रम बताया जा सकता है। उन्होंने इस रिवायत को कमज़ोर कहा है। लेकिन उनके नज़दीक नसब के इस हिस्से में बड़ा मतभेद है, मिलाप संभव नहीं। अल्लामा मंसूरपुरी ने इब्ने साद की रिवायत को प्रमुखता दी है जिसे तबरी और मसऊदी आदि ने भी दूसरे कथनों और रिवायतों के साथ ज़िक्र किया है। इस रिवायत के अनुसार अदनान और हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के बीच चालीस पीढ़ियां हैं।[3]

बहरहाल मअद के बेटे नज़ार से—जिनके बारे में कहा जाता है कि इनके अलावा मअद की कोई सन्तान न थी—कई परिवार अस्तित्व में आए। वास्तव में नज़ार के चार बेटे थे और हर बेटा एक बड़े क़बीले की बुनियाद बना। चारों के नाम ये हैं—

1. इयाद, 2. अनमार, 3. रबीआ और 4. मुज़र।

इनमें से अन्तिम दो क़बीलों की शाखाएं और उपशाखाएं बहुत ज़्यादा हुईं।

---

1. सहीह बुख़ारी, किताबुल मनाक़िब हदीस न० 3507, फ़त्हुल बारी 6/621-623, तारीख़ इब्ने ख़ल्लदून 2/1/46, 2/2/241, 242, साथ ही देखिए नसबे माद, अलयमनुल कबीर लिल कलबी 1/131
2. तबरी : तारीख़ुल उमम वल मुलूक 2/191-194, अल-आलाम 5/6
3. तबक़ाते इब्ने साद 1/56, तारीख़े तबरी 2/272, मसऊदी की मुरव्वजुज़्ज़हब 2/273, 274, तारीख़े इब्ने ख़ल्लदून 2/2/298, फ़त्हुल बारी 6/622 रहमतुल्लिल आलमीन 2/7-8, 14-17

चुनांचे रबीआ से असद बिन रबीआ, अन्ज़ा, अब्दुल क़ैस, वाइल, बिक्र, तग़लब और बनू हनीफ़ा वग़ैरह अस्तित्व में आए।

मुज़र की सन्तान दो बड़े क़बीलों में विभाजित हुई—

1. क़ैस ईलान बिन मुज़र,

2. इलयास बिन मुज़र

क़ैस ईलान से बनू सुलैम, बनू हवाज़िन, बनू ग़तफ़ान, ग़तफ़ान से अबस, ज़ुबियान, अशजअ और ग़नी बिन आसुर क़बीले अस्तित्व में आए।

इलयास बिन मुज़र से तमीम बिन मुर्रा, बुज़ैल बिन मुदरका, बनू असद बिन ख़ुज़ैमा और किनाना बिन ख़ुज़ैमा के क़बीले अस्तित्व में आए। फिर किनाना से क़ुरैश का क़बीला अस्तित्व में आया। यह क़बीला फ़िह्र बिन मालिक बिन नज़्र बिन किनाना की सन्तान है।

फिर क़ुरैश भी विभिन्न शाखाओं में बंटे। मशहूर क़ुरैशी शाख़ाओं के नाम ये हैं—जम्ह, सह्म, अदी, मख़्ज़ूम, तैम, ज़ोहरा और क़ुसई बिन किलाब के परिवार, यानी अब्दुद्दार, असद बिन अब्दुल उज़्ज़ा और अब्दे मुनाफ़, ये तीनों क़ुसई के बेटे थे। इनमें से अब्द मुनाफ़ के चार बेटे हुए, जिनसे चार उप क़बीले अस्तित्व में आए, यानी अब्द शम्स, नौफ़ल, मुत्तलिब और हाशिम। इन्हीं हाशिम की नस्ल से अल्लाह ने हमारे हुज़ूर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को चुना।

अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इर्शाद है कि अल्लाह ने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की सन्तान में से इस्माईल अलैहिस्सलाम को चुना, फिर इस्माईल अलैहिस्सलाम की औलाद में से किनाना को चुना और किनाना की नस्ल से क़ुरैश को चुना, फिर क़ुरैश में से बनू हाशिम को चुना और बनू हाशिम में से मुझे चुना।[1]

इब्ने अब्बास रज़ि० का बयान है कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह ने तमाम जीवों को पैदा किया, तो मुझे सबसे अच्छे गिरोह में बनाया, फिर इनके भी दो गिरोहों में से ज़्यादा अच्छे गिरोह के अन्दर रखा, फिर क़बीलों को चुना, तो मुझे सबसे अच्छे क़बीले के अन्दर बनाया, फिर घरानों को चुना तो मुझे सबसे अच्छे घरानों में बनाया, इसलिए मैं अपनी ज़ात (निज) के एतबार से भी सबसे अच्छा हूं और अपने घराने के एतबार से भी सबसे बेहतर हूं।[2]

---

1. सहीह मुस्लिम 2/245, जामे तिर्मिज़ी 2/201
2. तिर्मिज़ी 2/201

बहरहाल अदनान की नस्ल जब ज़्यादा बढ़ गई तो वह रोज़ी-रोटी की खोज में अरब के विभिन्न भू-भाग में फैल गई, चुनांचे क़बीला अब्दुल क़ैस ने, बिक्र बिन वाइल की कई शाखाओं ने और बनू तमीम के परिवारों ने बहरैन का रुख़ किया और उसी क्षेत्र में जा बसे।

बनू हनीफ़ा बिन साब बिन अली बिन बिक्र ने यमामा का रुख़ किया और उसके केन्द्र हिज्र में आबाद हो गये।

बिक्र बिन वाइल की बाक़ी शाखाओं ने, यमामा से लेकर बहरैन, काज़िमा तट, खाड़ी, सवादे इराक़, उबुल्ला और हय्यत तक के इलाक़ों में रहना-सहना शुरू कर दिया।

बनू तग़लब फ़रातिया द्वीप में जा बसे, अलबत्ता उनकी कुछ शाखाओं ने बनू बिक्र के साथ रहना-सहना पसन्द किया।

बनू तमीम बादिया बसरा में जाकर आबाद हो गए।

बनू सुलैम ने मदीना के क़रीब डेरे डाले। उनकी आबादी वादिल कुरा से शुरू होकर ख़ैबर और मदीना के पूरब से गुज़रती हुई हर्रा बनू सुलैम से मिले दो पहाड़ों तक फैली हुई थी।

बनू सक़ीफ़ तायफ़ में रहने-सहने लगे और बनू हवाज़िन ने मक्का के पूरब में औतास घाटी के आस-पास डेरे डाले। उनकी आबादी मक्का-बसरा राजमार्ग पर स्थित थी।

बनू असद तैमा के पूरब और कूफ़ा के पश्चिम में आबाद हो गए थे। उनके और तैमा के बीच बनू तै का एक परिवार बहतर आबाद था। बनू असद की आबादी और कूफ़े के बीच पांच दिन की दूरी थी।

बनू ज़िबयान तैमा के क़रीब हौरान के आस-पास आबाद हो गये थे।

तिहामा में बनू किनाना के परिवार रह गये थे। इनमें से कुरैशी परिवारों का रहना-सहना मक्का और उसके आस-पास था। ये लोग बिखरे हुए थे, ये आपस में बंधे हुए न थे, यहां तक कि कुसई बिन किलाब उभरा और कुरैशियों को एक बनाकर उन्हें मान-सम्मान और उच्च व श्रेष्ठ स्थान दिलाया।[1]

---

1. विस्तार में जानने के लिए देखिए जमहरतुन्नसब, नसब साद वल यमनुल कबीर, अंसाबुल कुरशीयीन, निहायतुल अदब व क़लाइदुल जमान, सबाइकुज़्ज़हब आदि।

अरब हुकूमतें और सरदारियां

इस्लाम से पहले अरब के जो हालात थे, उन पर वार्त्ता करते हुए उचित जान पड़ता है कि वहां की हुकूमतों, सरदारियों और धर्मों का भी एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर दिया जाए, ताकि इस्लाम के प्रकट होते समय जो स्थिति थी, वह आसानी से समझ में आ सके।

जिस समय अरब प्रायद्वीप पर इस्लाम-सूर्य की चमचमाती किरणें प्रज्वलित हुईं, वहां दो प्रकार के शासक थे। एक ताजपोश (गद्दीधारी) बादशाह, जो वास्तव में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त न थे, दूसरे क़बीलागत सरदार, जिन्हें अधिकारों की दृष्टि से वही प्रमुखता प्राप्त थी जो ताजपोश बादशाहों को प्राप्त थी, लेकिन उनकी बड़ी संख्या को एक और प्रमुखता यह भी मिली हुई थी कि वे पूरे तौर पर स्वायत्तशासी थे।

ताजपोश या गद्दीधारी शासक ये थे—

यमन के बादशाह, आले ग़स्सान (शाम) के बादशाह और हियरा (इराक़) के बादशाह, शेष अरब शासक ताजपोश न थे।

यमन की बादशाही

अरब आरबा में से जो सबसे पुरानी यमनी जाति मालूम हो सकी, वह सबा जाति है। उर (इराक़) से जो शिलालेख मिले हैं, उनमें ढाई हज़ार साल ईसा पूर्व इस जाति का उल्लेख मिलता है। लेकिन इसकी उन्नति का युग ग्यारह शताब्दी ईसा पूर्व से शुरू होता है। उसके इतिहास के महत्वपूर्ण युग ये हैं—

1. 1200 ई०पू० से 620 ई०पू० तक का युग—इस युग में सबा के बादशाहों की उपाधि मक्रिबे सबा थी, उनकी राजधानी सरवाह थी, जिसके खंडहर आज भी मआरिब के उत्तर पश्चिम में 50 किलोमीटर की दूरी पर पाए जाते हैं और खरीबा के नाम से मशहूर हैं। इसी युग में मआरिब के प्रसिद्ध बांध की बुनियाद रखी गई जिसे यमन के इतिहास में बड़ा महत्व दिया गया है। कहा जाता है कि इस युग में सबा साम्राज्य को इतनी उन्नति हुई कि उन्होंने अरब के अन्दर और अरब से बाहर जगह-जगह अपने उपनिवेश बना लिए थे। इस युग के बादशाहों की तायदाद का अनुमान 23 से 26 तक किया गया है।

2. 650 ईसा पूर्व से 115 ईसा पूर्व तक का युग—इस युग में सबा के बादशाहों ने मक्रिब का शब्द छोड़कर मलिक की उपाधि अपना ली थी और

सरवाह के बजाए मआरिब को अपनी राजधानी बनाई। इस नगर के खंडहर आज भी सुनआ से 192 किलोमीटर पूरब में पाए जाते हैं।

3. 115 ईसा पूर्व से सन् 300 ई० तक का युग—इस युग में सबा साम्राज्य पर हिमयर क़बीले को ग़लबा हासिल रहा और उसने मआरिब के बजाए रैदान को अपनी राजधानी बनाया, फिर रैदान का नाम ज़िफ़ार पड़ गया, जिसके अवशेष आज भी नगर 'मरयम' के क़रीब एक गोल पहाड़ी पर पाए जाते हैं।

यही युग है जिसमें सबा जाति का पतन शुरू हुआ। पहले नब्तियों ने उत्तरी हिजाज़ पर अपना प्रभुत्व स्थापित करके सबा को उनके उपनिवेशों से निकाल बाहर किया, फिर रूमियों ने मिस्र व शाम और उत्तरी हिजाज़ पर क़ब्ज़ा करके उनके व्यापार के समुद्री रास्ते को ख़तरनाक बना दिया और इस तरह उनका व्यापार धीरे-धीरे नष्ट हो गया। इधर क़हतानी क़बीले ख़ुद भी आपस ही में जूझ रहे थे। इन परिस्थितियों का नतीजा यह हुआ कि क़हतानी क़बीले अपना देश छोड़-छोड़ कर इधर-उधर बिखर गए।

4. सन् 300 ई० के बाद से इस्लाम के शुरू का युग—इस युग में यमन के भीतर बराबर अशान्ति और बेचैनी फैलती रही। क्रान्तियां आईं, गृह-युद्ध हुए और विदेशियों को हस्तक्षेप करने के मौक़े मिल गए, यहां तक कि एक वक़्त ऐसा भी आया कि यमन की स्वायत्तता समाप्त हो गई। चुनांचे यही युग है जिसमें रूमियों का अदन पर फ़ौजी क़ब्ज़ा हो गया और उनकी मदद से हब्शियों ने हिमयर व हमदान के आपसी संघर्ष का फ़ायदा उठाते हुए 340 ई० में पहली बार यमन पर क़ब्ज़ा कर लिया, जो सन् 378 ई० तक बाक़ी रहा। इसके बाद यमन की स्वायत्तता तो बहाल हो गई, मगर 'मआरिब' के प्रसिद्ध बांध में ख़राबी आनी शुरू हो गई, यहां तक कि 450 या 451 ई० में बांध टूट गया और एक ज़बरदस्त बाढ़ आई जिसका उल्लेख क़ुरआन मजीद (सूरः सबा) में 'सैले अरिम' के नाम से किया गया है। यह बहुत बड़ी दुर्घटना थी। इसके नतीजे में आबादी की आबादी उजड़ गई और बहुत से क़बीले इधर-उधर बिखर गए।

फिर सन् 523 ई० में एक और भयानक दुर्घटना हुई अर्थात् यमन के यहूदी बादशाह ज़ूनवास ने नजरान के ईसाइयों पर एक ज़बरदस्त हमला करके उन्हें ईसाई धर्म छोड़ने पर बाध्य करना चाहा और जब वे उस पर तैयार न हुए तो ज़ूनवास ने खाइयां खुदवाकर उन्हें भड़कती हुई आग के अलाव में झोंक दिया। क़ुरआन मजीद ने सूरः बुरूज की आयतों 'क़ुति-ल अस्हाबुल उख़दूद. . .० में इस लोमहर्षक घटना की ओर इशारा किया है। इस घटना का नतीजा यह हुआ कि ईसाइयत, जो रूमी बादशाहों के नेतृत्व में अरब क्षेत्रों पर विजय पाने और विस्तारवादी होने में पहले ही

से मुस्तैद और तेज थी, बदला लेने पर तुल गई और हब्शियों को यमन पर हमले के लिए उकसाते हुए उन्हें समुद्री बेड़ा जुटाया। हब्शियों ने रूमियों का समर्थन पाकर सन् 525 ई० में अरयात के नेतृत्व में सत्तर हज़ार फ़ौज से यमन पर दोबारा क़ब्ज़ा कर लिया। क़ब्ज़े के बाद शुरू में तो हब्श के गवर्नर की हैसियत से अरयात ने यमन पर शासन किया, लेकिन फिर उसकी सेना के एक आधीन कमांडर—अबरहा—ने 549 ई० में उसकी हत्या करके ख़ुद सत्ता हथिया ली और हब्श के बादशाह को भी अपने इस काम पर राज़ी कर लिया।

सनआ वापस आकर अबरहा इंतिक़ाल कर गया। उसकी जगह उसका बेटा बकसोम, फिर दूसरा बेटा यसरूक़ उत्तराधिकारी हुआ। कहा जाता है कि ये दोनों यमन वालों पर ज़ुल्म ढाने और उन्हें रुसवा व ज़लील करने में अपने बाप से भी बढ़कर थे।

यह वही अबरहा है जिसने जनवरी 571 ई० में ख़ाना कबा को ढाने की कोशिश की और एक भारी फ़ौज के अलावा कुछ हाथियों को भी हमले के लिए साथ लाया, जिसकी वजह से यह 'फ़ौज' असहाबे फ़ीले (हाथियों वाली) के नाम से मशहूर हुई।

इधर हाथियों की इस घटना में हब्शियों की जो तबाही हुई, उससे फ़ायदा उठाते हुए यमन वालों ने फ़ारस सरकार से मदद मांगी और हब्शियों के ख़िलाफ़ विद्रोह करके सैफ़ ज़ी यज़न हिमयरी के बेटे मादीकर्ब के नेतृत्व में हब्शियों को देश से निकाल बाहर किया और एक स्वतंत्र जाति की हैसियत से मादीकर्ब को अपना बादशाह चुन लिया। यह सन् 575 ई० की घटना है।

आज़ादी के बाद मादीकर्ब ने कुछ हब्शियों को अपनी सेवा और शाही दरबार में ज़ीनत के लिए रोक लिया, लेकिन यह शौक़ महंगा पड़ा। इन हब्शियों ने एक दिन मादीकर्ब को धोखे से क़त्ल करके ज़ीयज़न के परिवार के शासन का चिराग़ हमेशा के लिए बुझा दिया। इधर किसरा ने इस स्थिति का फ़ायदा उठाते हुए सनआ पर एक फ़ारसी नस्ल का गवर्नर मुक़र्रर करके यमन को फ़ारस का एक प्रान्त बना लिया। इसके बाद यमन पर एक के बाद एक फ़ारसी गवर्नरों की नियुक्ति होती रही, यहां तक कि आख़िरी गवर्नर बाज़ान ने सन् 628 ई० में इस्लाम स्वीकार कर लिया और उसके साथ ही यमन फ़ारसी सत्ता से आज़ाद होकर इस्लाम की अमलदारी में आ गया।[1]

---

1. मौलाना सैयद सुलेमान नदवी रह० ने तारीख़े अर्ज़ुल क़ुरआन भाग 1 में पृ० 133 से अन्त तक विभिन्न ऐतिहासिक गवाहियों की रोशनी में सबा जाति के हालात सविस्तार लिखे हैं। मौलाना मौदूदी ने 'तफ़्हीमुल क़ुरआन' 4/195-198 में कुछ विवरण दिए हैं,

हियरा की बादशाही

इराक़ और उसके पास-पड़ोस के क्षेत्रों पर कोरोश कबीर (ख़ोरस या साइरस ज़ुलक़रनैन 557 ईसा पूर्व–529 ईसा पूर्व) के ज़माने ही से फ़ारस वालों का शासन चला आ रहा था। कोई न था जो उनके मुक़ाबले में आने की जुर्रात करता, यहां तक कि सन् 326 ई०पू० में सिकन्दर मक़्दूनी के दारा प्रथम को हराकर फ़ारसियों की ताक़त तोड़ दी, जिसके नतीजे में उनका देश टुकड़े-टुकड़े हो गया और अफ़रा-तफ़री शुरू हो गई। यह अशान्ति सन् २३० ई० तक जारी रही और इसी दौरान क़ह्तानी क़बीलों ने देश छोड़कर इराक़ के एक बहुत बड़े हरे-भरे सीमावर्ती क्षेत्र में रहना-सहना शुरू कर दिया, फिर अदनानी देश छोड़ने वालों का एक रेला आया और उन्होंने लड़-भिड़कर फ़रातिया द्वीप के एक भाग को अपने रहने की जगह बना ली।

इधर 226 ई० में अर्दशीर ने जब सासानी साम्राज्य की नींव डाली, तो धीरे-धीरे फ़ारसियों की ताक़त एक बार फिर पलट आई। अर्दशीर ने फ़ारसियों को जोड़ा और अपने देश की सीमा पर आबाद अरबों को आधीन बना लिया। इसी के नतीजे में क़ुज़ाआ ने शाम देश का रास्ता लिया, जबकि हियरा और अम्बार के अरब निवासियों ने टैक्स देना गवारा कर लिया।

अर्दशीर के युग में हियरा, बादियतुल इराक़ और द्वीप के रबीई और मुज़री क़बीलों पर जज़ीमतुल वज़्ज़ाह का शासन था। ऐसा मालूम होता है कि अर्दशीर ने महसूस कर लिया था कि अरब निवासियों पर सीधे-सीधे शासन करना और उन्हें सीमा पर लूट-मार से रोके रखना संभव नहीं, बल्कि उनको रोके रखने की केवल एक ही शक्ल है कि ख़ुद किसी ऐसे अरब को उनका शासक बना दिया जाए जिसे अपने कुंबे-क़बीले का समर्थन प्राप्त हो। इसका एक लाभ यह भी होगा कि ज़रूरत पड़ने पर रूमियों के ख़िलाफ़ उनसे मदद ली जा सकेगी और शाम के रूम समर्थक अरब शासकों के मुक़ाबले में इराक़ के इन अरब शासकों को खड़ा किया जा सकेगा।

हियरा के बादशाहों के पास फ़ारसी फ़ौज की एक यूनिट हमेशा रहा करती थी, जिससे ग्रामीण अरब विद्रोहियों को कुचलने का काम लिया जाता था।

सन् 268 ई० की सीमाओं में जज़ीमा का देहावसान हो गया और अम्र बिन

लेकिन ऐतिहासिक स्रोतों में सनों आदि के सम्बन्ध में बड़े मतभेद हैं, यहां तक कि कुछ शोधकर्त्ताओं ने इन विवरणों को 'पहलों की गाथा' कहा है।

अदी बिन नस्र लखमी (सन् 268-288) उसका उत्तराधिकारी हुआ। यह लख्म क़बीले का पहला शासक था और शापुर अर्दशीर का समकालीन था। उसके बाद क़बाज़ बिन फ़ीरोज़ (448 ई०-531 ई०) के युग तक हियरा पर लख्मियों का लगातार शासन रहा। क़बाज़ के युग में मुज़दक प्रकट हुआ जो नग्नता का झंडाबरदार था। क़बाज़ और उसकी बहुत-सी प्रजा ने मुज़दक का समर्थन किया, फिर क़बाज़ ने हियरा के बादशाह मुन्ज़िर बिन माइस्समाइ (521-554 ई०) को सन्देश भेजा कि तुम भी यही तरीक़ा अपना लो। मुन्ज़िर बड़ा स्वाभिमानी था, इन्कार कर बैठा। नतीजा यह हुआ कि क़बाज़ ने उसे पदच्युत करके उसकी जगह मुज़दकी दावत के एक पैरोकार हारिस बिन अम्र बिन हिज्र किन्दी को हियरा का शासन सौंप दिया।

क़बाज़ के बाद फ़ारस की बागडोर किसरा नौशेरवां के हाथ आई। उसे इस धर्म से सख़्त नफ़रत थी। उसने मुज़दक और उसके समर्थकों की एक बड़ी तायदाद की हत्या करा दी। मुन्ज़िर को दोबारा हियरा का शासक बना दिया और हारिस बिन अम्र को अपने यहां बुला भेजा, लेकिन वह बनू कल्ब के इलाक़े में भाग गया और वहीं अपनी ज़िंदगी गुज़ार दी।

मुन्ज़िर बिन माइस्समा के बाद नोमान बिन मुन्ज़िर (सन् 583 ई०-605 ई०) के युग तक हियरा का शासन उसी की नस्ल में चलता रहा, फिर ज़ैद बिन अदी इबादी ने किसरा से नोमान बिन मुंज़िर की झूठी शिकायत की। किसरा भड़क उठा और नोमान को अपने पास तलब किया। नोमान चुपके से बनू शैबान के सरदार हानी बिन मस्ऊद के पास पहुंचा और अपने घरवालों और माल व दौलत को उसकी अमानत में देकर किसरा के पास गया। किसरा ने उसे क़ैद कर लिया और क़ैद ही में उसका देहान्त हो गया।

इधर किसरा ने नोमान को क़ैद करने के बाद उसकी जगह इयास बिन क़बीसा ताई को हियरा का शासक बनाया और उसे हुक्म दिया कि हानी बिन मसऊद से नोमान की अमानत तलब करे, हानी स्वाभिमानी था, उसने सिर्फ़ इंकार ही नहीं किया, बल्कि लड़ाई का एलान भी कर दिया। फिर क्या था, इयास से अपने साथ किसरा की भारी सेना और मरज़बानों की जमाअत लेकर रवाना हुआ और ज़ीक़ार के मैदान में दोनों फ़रीक़ों में घमासान की लड़ाई हुई, जिसमें बनू शैबान को विजय मिली और फ़ारसियों को बुरी तरह पसपा होना पड़ा। यह पहला मौक़ा था जब अरब ने अजम पर विजय प्राप्त की थी। यह घटना नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के जन्म के थोड़े ही दिनों पहले या बाद की है। आपका जन्म हियरा पर इयास के शासन के आठवें महीने में हुआ था।

इयास के बाद किसरा ने हियरा पर एक फ़ारसी शासक नियुक्त किया, लेकिन 632 ई० में लख़्मियों की सत्ता फिर बहाल हुई और मुन्ज़िर बिन मारूर नामी इस क़बीले के एक व्यक्ति ने बागडोर संभाली, मगर अभी उसको सत्ता में आए आठ महीने ही हुए थे कि इज़रत ख़ालिद बिन वलीद रज़ियल्लाहु अन्हु इस्लाम की भारी सेना लेकर हियरा में दाख़िल हो गये।

शाम की बादशाही

जिस ज़माने में अरब क़बीलों की हिजरत (देश-परित्याग) ज़ोरों पर थी, क़बीला कुज़ाआ की कुछ शाखाएं शाम की सीमाओं में आकर आबाद हो गईं। उनका ताल्लुक़ बनी सुलैम बिन हलवान से था और उन्हीं में की एक शाखा बनू ज़ुजअम बिन सुलैम थी, जिसे ज़ुजाइमा के नाम से ख्याति मिली। कुज़ाआ की इस शाखा को रूमियों ने अरब मरुस्थल के बद्दुओं की लूटमार रोकने और फ़ारसियों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने के लिए अपना समर्थक बनाया और उसी के एक व्यक्ति के सिर पर शासन का मुकुट रख दिया। इसके बाद मुद्दतों उनका शासन रहा। उनका सबसे मशहूर बादशाह ज़ियाद बिन हयोला गुज़रा है। अन्दाज़ा किया गया है कि ज़जाइमा का शासनकाल पूरी दूसरी सदी ईसवी पर छाया रहा है, इसके बाद उस क्षेत्र में आले ग़स्सान का आगमन हुआ और ज़जाइमा का शासन जाता रहा।[1] आले ग़स्सान ने बनू ज़ुजअम को हरा कर उनके सारे क्षेत्र पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह स्थिति देखकर रूमियों ने भी आले ग़स्सान को शाम के क्षेत्र के अरब निवासियों का बादशाह मान लिया। आले ग़स्सान की राजधानी दूमतुल जन्दल थी और रूमियों के एजेंट के रूप में शाम के क्षेत्र पर उनका शासन बराबर क़ायम रहा, यहां तक कि हज़रत उमर फ़ारूक़ के ख़िलाफ़त-काल में सन् 13 हि० में यरमूक की लड़ाई हुई और आले ग़स्सान का अन्तिम शासक जबला बिन ऐहम मुसलमान हो गया।[2] (यद्यपि उसका गर्व इस्लामी समानता को अधिक दिनों तक सहन न कर सका और वह विधर्मी हो गया।)

हिजाज़ की इमारत (सरदारी)

यह मालूम है कि मक्का में आबादी की शुरूआत हज़रत इस्माईल

---

1. मुहाज़राते ख़ज़री 1/34, तारीख़े अरज़ुल क़ुरआन 2/80-82
2. पैदाइश (बाइबिल) 25 : 17, तारीख़ तबरी 1/314, एक दूसरे कथनानुसार 130 साल में वफ़ात पाई, तबरी व याक़ूबी 1/222

अलैहिस्सलाम से हुई। आपने 137 साल की उम्र पाई और जब तक ज़िंदा रहे, मक्का के मुखिया और बैतुल्लाह के मुतवल्ली रहे। आपके बाद आपके दो सुपुत्र —नाबित, फिर क़ैदार या क़ैदार फिर नाबित—एक के बाद एक मक्का के मुखिया हुए। इनके बाद इनके नाना मज़ाज़ बिन अम्र जुरहमी ने सत्ता अपने हाथ में ले ली और इस तरह मक्का की सरदारी बनू जुरहम के पास चली गई और एक समय तक उन्हीं के पास रही। हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम चूंकि (अपने पिता के साथ मिलकर) बैतुल्लाह की बुनियाद रखने वाले और उसे बनाने वाले थे, इसलिए उनकी सन्तान को एक श्रेष्ठ स्थान ज़रूर मिलता रहा, लेकिन सत्ता और अधिकार में उनका कोई हिस्सा न था।[1]

फिर दिन पर दिन और साल पर साल बीतते गए, लेकिन हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम की सन्तान गुमनाम की गुमनाम ही रही, यहां तक कि बख़्त नस्र के प्रकट होने से कुछ पहले बनू जुरहुम की ताक़त कमज़ोर पड़ गई और मक्का के क्षितिज पर अदनान का राजनीतिक सितारा जगमगाना शुरू हुआ। इसका प्रमाण यह है कि बख़्त नस्र ने ज़ाते इर्क़ में अरबों से जो लड़ाई लड़ी थी, उसमें अरब फ़ौज का कमांडर जुरहुमी न था, बल्कि ख़ुद अदनान था।[2]

फिर बख़्त नस्र ने जब सन् 587 ई०पू० में दूसरा हमला किया तो बनू अदनान भागकर यमन चले गए। उस वक़्त बनू इसराईल के नबी हज़रत यरमियाह थे। इनके शिष्य बरख़या अदनान के बेटे माद को अपने साथ शाम देश ले गये और जब बख़्त नस्र का ज़ोर समाप्त हुआ और माद मक्का आए तो उन्हें क़बीला जुरहुम का केवल एक व्यक्ति जरशम बिन जलहमा मिला। माद ने उसकी लड़की मआना से शादी कर ली और उसी के पेट से नज़ार पैदा हुआ।[3]

इसके बाद मक्का में जुरहुम की हालत ख़राब होती गई। उन्हें तंगदस्ती ने आ घेरा। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने बैतुल्लाह की ज़ियारत करने वालों पर ज़्यादतियां शुरू कर दीं और ख़ाना काबा का माल खाने से भी न झिझके।[4] इधर बनू अदनान भीतर ही भीतर उनकी इन हरकतों पर कुढ़ते और भड़कते रहे। इसीलिए जब बनू ख़ुज़ाआ ने मर्रज़्ज़हरान में पड़ाव किया और देखा कि बनू अदनान बनू जुरहुम से नफ़रत करते हैं, तो इसका फ़ायदा उठाते हुए एक अदनानी

1. इब्ने हिशाम 1/111-113। इब्ने हिशाम ने इस्माईल अलैहिस्सलाम की सन्तान में से सिर्फ़ नाबित के मुतवल्ली होने का उल्लेख किया है।
2. तारीख़ तबरी 1/559
3. तारीख़ तबरी 1/559, 561, 2/271, फ़त्हुल बारी 6/722
4. तारीख़ तबरी 2/284

क़बीले (बनू बिक्र बिन अब्दे मुनाफ़ बिन किनाना) को साथ लेकर बनू जुरहुम के विरुद्ध लड़ाई छेड़ दी और उन्हें मक्का से निकाल कर सत्ता पर ख़ुद क़ब्ज़ा कर लिया। यह घटना दूसरी सदी ईसवी के बीच की है।

बनू जुरहुम ने मक्का छोड़ते वक़्त ज़मज़म का कुंआ पाट दिया और उसमें कई ऐतिहासिक चीज़ें गाड़कर उसके चिह्न भी मिटा दिये। मुहम्मद बिन इसहाक़ का बयान है कि अम्र बिन हारिस बिन मुज़ाज़[1] जुरहुमी ने ख़ाना काबा के दोनों हिरन[2] और उसके कोने में लगा हुआ पत्थर—हजरे अस्वद—निकालकर ज़मज़म के कुएं में दफ़न कर दिया और अपने क़बीले बनू जुरहुम को साथ लेकर यमन चला गया। बनू जुरहुम को मक्का से देश-निकाला का और वहां के शासन के समाप्त होने का बड़ा दुख था। चुनांचे अम्र ने इसी सिलसिले में ये पद कहे—

'लगता है जहून से सनआ तक कोई जानने वाला था ही नहीं और न किसी क़िस्सा कहने वाले ने मक्का की रात-रात भर की मज्लिसों में कोई क़िस्सा सुनाया। क्यों नहीं? निश्चय ही हम उसके निवासी थे, लेकिन समय की चालों और टूटे हुए भाग्यों ने हमें उजाड़ फेंका।'[3]

हज़रत इस्माईल का युग लगभग दो हज़ार ईसा पूर्व का है। इस हिसाब से मक्का में क़बीला जुरहुम का अस्तित्व लगभग दो हज़ार एक सौ वर्ष तक रहा और उनका शासन लगभग दो हज़ार वर्ष चला।

बनू ख़ुज़ाआ ने मक्का पर क़ब्ज़ा करने के बाद बनू बिक्र को शामिल किए बिना अपना शासन चलाया, अलबत्ता तीन बड़े महत्वपूर्ण पद ऐसे थे जो मुज़री क़बीलों के हिस्से में आए।

1. हाजियों को अरफ़ात से मुज़दलफ़ा ले जाना और यौमुन्नज़र—13 ज़िलहिज्जा को जोकि हज के सिलसिले का अन्तिम दिन है—मिना से कूच करने का परवाना देना। यह पद इलयास बिन मुज़र के परिवार बनू ग़ौस बिन मुर्रा को प्राप्त था, जो सूफ़ा कहलाते थे। इस पद का स्पष्टीकरण इस तरह है कि

---

1. यह वह मुज़ाज़ जुरहुमी नहीं है जिसका उल्लेख हज़रत इस्माईल की घटना में हो चुका है।
2. मसऊदी ने लिखा है कि फ़ारस वाले पिछले युग में ख़ाना काबा के लिए हीरे-जवाहरात भेजते रहते थे। सासान बिन बाबक ने सोने के बने हुए दो हिरन, जवाहरात, तलवारें और बहुत-सा सोना भेजा था। अम्र ने यह सब ज़मज़म के कुएं में डाल दिया था। (मुरूजुज़ ज़हब 1/205)
3. इब्ने हिशाम 1/114-115

13 ज़िलहिज्जा को हाजी कंकड़ी न मार सकते थे, यहां तक कि पहले सूफ़ा का एक आदमी कंकड़ी मार लेता, फिर हाजी कंकड़ी मार कर फ़ारिग़ हो जाते और मिना से रवानगी का इरादा करते तो सूफ़ा के लोग मिना के एक मात्र रास्ते अक़्बा के दोनों ओर घेरा डाल कर खड़े हो जाते और जब तक खुद न गुज़र लेते किसी को गुज़रने न देते। उनके गुज़र लेने के बाद बाक़ी लोगों के लिए रास्ता ख़ाली हो जाता। जब सूफ़ा ख़त्म हो गये तो यह पद बनू तमीम के एक परिवार बनू साद बिन ज़ैद मनात को मिल गया।

2. 10 ज़िलहिज्जा की सुबह को मुज़दलफ़ा से मिना की ओर रवानगी। यह पद बनू अदवान को प्राप्त था।

3. हराम महीनों को आगे-पीछे करना। यह पद बनू किनाना की एक शाखा बनू तमीम बिन अदी को प्राप्त था।[1]

मक्का पर बनू ख़ुज़ाआ का आधिपत्य कोई तीन सौ वर्ष तक क़ायम रहा।[2] यही समय था जब अदनानी क़बीले मक्का और हिजाज़ से निकल कर नज्द, इराक़ के आस-पास और बहरैन वग़ैरह में फैले और मक्का के पास-पड़ोस में सिर्फ़ क़ुरैश की कुछ शाखाएं बाक़ी रहीं, जो ख़ानाबदोश थीं, उनकी अलग-अलग टोलियां थीं और बनू किनाना में उनके कुछ बिखरे घराने थे, मगर मक्का की हुकूमत और बैतुल्लाह के मुतवल्ली होने में उनका कोई हिस्सा न था, यहां तक कि क़ुसई बिन किलाब प्रकट हुआ।[3]

क़ुसई के बारे में बताया जाता है कि वह अभी गोद ही में था कि उसके पिता का देहांत हो गया। इसके बाद उसकी मां ने बनू उज़रा के एक व्यक्ति रबीआ बिन हराम से शादी कर ली। यह क़बीला चूंकि शाम देश के पास-पड़ोस में रहता था, इसलिए क़ुसई की मां वहीं चली गई और वह क़ुसई को भी अपने साथ लेती गई। जब क़ुसई जवान हुआ, तो मक्का वापस आया। उस वक़्त मक्का का सरदार हुलैल बिन हब्शीया ख़ुज़ाई था। क़ुसई ने उसके पास उसकी बेटी हबी से विवाह का संदेशा दिया। हुलैल ने मंज़ूर कर लिया और शादी कर दी।[4] इसके बाद जब हुलैल का देहान्त हुआ, तो मक्का और बैतुल्लाह के मुतवल्ली बनने के लिए ख़ुज़ाआ और क़ुरैश के बीच लड़ाई छिड़ गई और उसके

---

1. इब्ने हिशाम, 1/44, 119-122
2. याक़ूतः माद्दा मक्का, फ़त्हुल बारी 6/33, मसऊदी की मुरव्वजुज़्ज़ह्ब, 2/58
3. मुहाज़रात ख़ज़री 1/35, इब्ने हिशाम 1/117
4. इब्ने हिशाम 1/117-118

नतीजे में मक्का और बैतुल्लाह पर क़ुसई का आधिपत्य स्थापित हो गया।

लड़ाई की वजह क्या थी? इस बारे में तीन बयान मिलते हैं—

एक यह कि जब क़ुसई की औलाद ख़ूब फल-फूल गई, उसके पास धन-धान्य का बाहुल्य हो गया और उसकी प्रतिष्ठा भी बढ़ गई और उधर हुलैल का देहान्त हो गया, तो क़ुसई ने महसूस किया कि अब बनू ख़ुज़ाआ और बूनबिक्र के बजाए मैं काबा का मुतवल्ली बनने और मक्का पर शासन करने का कहीं ज़्यादा अधिकारी हूं, उसे यह एहसास भी था कि क़ुरैश ख़ालिस इस्माईली अरब हैं और बाक़ी आले इस्माईल के सरदार भी हैं, (इसलिए सरदारी के हक़दार वही हैं।) चुनांचे उसने क़ुरैश और बनू ख़ुज़ाआ के कुछ लोगों से बातचीत की कि क्यों न बनू ख़ुज़ाआ और बूनबिक्र को मक्का से निकाल बाहर किया जाए। इन लोगों ने उसकी राय से सहमति व्यक्त की।[1]

दूसरा बयान यह है कि—ख़ुज़ाआ के कथनानुसार—ख़ुद हुलैल ने क़ुसई को वसीयत की थी कि वह काबा की देखभाल करेगा और मक्का की बागडोर संभालेगा।[2]

तीसरा बयान यह है कि हुलैल ने अपनी बेटी हुबी को बैतुल्लाह का मुतवल्ली बनाया था और अबू ग़बशान[3] ख़ुज़ाई को उसका वकील बनाया था। चुनांचे हुबी के नायब की हैसियत से वही ख़ाना काबा की कुंजियों का मालिक था। जब हुलैल का देहान्त हो गया, तो क़ुसई ने अबू ग़बशान से एक मशक शराब के बदले काबा का मुतवल्ली होना ख़रीद लिया था, लेकिन ख़ुज़ाआ ने यह ख़रीदना-बेचना मंज़ूर न किया और क़ुसई को बैतुल्लाह से रोकना चाहा। इस पर क़ुसई ने बनू ख़ुज़ाआ को मक्का से निकालने के लिए क़ुरैश और बनू किनाना को जमा किया और वे क़ुसई की आवाज़ पर लब्बैक कहते हुए जमा हो गए।[4]

बहरहाल कारण जो भी हो, घटनाओं का क्रम इस तरह है कि जब हुलैल का देहान्त हो गया और सूफ़ा ने वही करना चाहा, जो वे हमेशा करते आए थे, तो क़ुसई ने क़ुरैश और किनाना के लोगों को साथ लिया और अक़बा के नज़दीक, जहां वे जमा थे, उनसे आकर कहा कि तुमसे ज़्यादा हम इस पद के हक़दार हैं।

1. सीरते इब्ने हिशाम 1/117-118, तबरी 2/255, 256
2. सीरत इब्ने हिशाम, 1/118, अर-रौज़ुल उन्फ़ 1/142,
3. इसका नाम मुहर्रिश या सुलैम बिन अम्र था। फ़त्हुल बारी 6/633, अर-रौज़ुल उन्फ़ 1/142,
4. तारीख़ याक़ूबी 1/239, फ़त्हुल बारी 6/634, मसऊदी 2/58,

इस पर सूफ़ा ने लड़ाई छेड़ दी, पर क़ुसई ने उन्हें परास्त करके यह पद छीन लिया। यही मौक़ा था जब ख़ुज़ाआ और बनू बिक्र ने क़ुसई से अपना दामन खींचना शुरू कर दिया। इस पर क़ुसई ने उन्हें भी ललकारा, फिर क्या था। दोनों फ़रीक़ों में घमासान की लड़ाई शुरू हो गई और दोनों ओर के बहुत-से आदमी मारे गए। इसके बाद समझौते की आवाज़ें उठने लगीं और बनूबिक्र के एक व्यक्ति यामर बिन औफ़ को अध्यक्ष बनाया गया। यामर ने फ़ैसला किया कि ख़ुज़ाआ के बाजए क़ुसई ख़ाना काबा का मुतवल्ली बनने और मक्का की सरदारी अपने हाथ में रखने का ज़्यादा हक़दार है, साथ ही क़ुसई ने जितना ख़ून बहाया है, सब बेकार समझ कर पांव तले रौंद रहा हूं। अलबत्ता ख़ुज़ाआ और बनूबिक्र ने जिन लोगों को क़त्ल किया है, उनकी दियत (जुर्माना) अदा करें और ख़ाना काबा को बेरोक-टोक क़ुसई के हवाले कर दें। इसी फ़ैसले की वजह से यामर की उपाधि शद्दाख़ पड़ गई।[1] शद्दाख़ का अर्थ है पांव तले रौंदने वाला।

इस फ़ैसले के नतीजे में क़ुसई और क़ुरैश को मक्का पर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त हो गया और क़ुसई बैतुल्लाह का धार्मिक नेता बन गया, जिसकी ज़ियारत के लिए अरब के कोने-कोने से आने वालों का तांता बंधा होता था। मक्का पर क़ुसई के आधिपत्य की यह घटना पांचवीं सदी ईसवी के मध्य अर्थात् 440 ई० की है।[2]

क़ुसई ने मक्का की व्यवस्था इस तरह की कि क़ुरैश को मक्का के पास-पड़ोस से बुलाकर पूरा शहर उन पर बांट दिया और हर परिवार के रहने-सहने का ठिकाना तै कर दिया, अलबत्ता महीने आगे-पीछे करने वालों को, साथ ही आले सफ़वान बनू अदवान और बनू मुर्रा बिन औफ़ को उनके पदों पर बाक़ी रखा, क्योंकि क़ुसई समझता था कि यह भी दीन है, जिसमें रद्दोबदल करना सही नहीं।[3]

क़ुसई का एक कारनामा यह भी है कि उसने काबा के हरम के उत्तर में दारुन्नदवः बनवाया। (उसका द्वार मस्जिद की ओर था) दारुन्नदवः असल में क़ुरैश की पार्लियामेंट थी, जहां तमाम बड़े-बड़े और अहम मामलों के फ़ैसले होते थे। क़ुरैश पर दारुन्नदवः के बड़े उपकार हैं, क्योंकि यह उनके एक होने की गारंटी देता था और यहीं उनकी उलझी हुई समस्याएं बड़े अच्छे ढंग से तै होती थीं।[4]

क़ुसई की सरदारी सबको मान्य थी। नीचे लिखी ज़िम्मेदारियां इसी का पता

---

1. इब्ने हिशाम 1/123, 124, तारीख़ तबरी 3/255-258
2. क़ल्बे जज़ीरतुल अरब, पृ० 232, फ़त्हुल बारी 6/633, मसऊदी 2/58,
3. इब्ने हिशाम 1/124-125
4. वही, 1/125, मुहाज़राते ख़ज़री 1/36, अख़बारुल किराम पृ० 152

देती हैं—

1. दारुन्नदवः की अध्यक्षता—जहां बड़े-बड़े मामलों के बारे में मश्विरे होते थे और जहां लोग अपनी लड़कियों की शादियां भी करते थे।

2. लिवा—यानी लड़ाई का झंडा क़ुसई ही के हाथों बांधा जाता था।

3. ख़ाना काबा की देखभाल—इसका अर्थ यह है कि ख़ाना काबा का द्वार क़ुसई ही खोलता था और वही ख़ाना काबा की सेवा करता था और उसकी कुंजियां उसी के हाथ में रहती थीं।

4. सक़ाया (पानी पिलाना) —इसकी शक्ल यह थी कि कुछ हौज़ में हाजियों के लिए पानी भर दिया जाता था और उसमें कुछ खजूर और किशमिश डाल कर उसे मीठा बना दिया जाता था। जब हाजी लोग मक्का आते थे, तो उसे पीते थे।

5. रिफ़ादा (हाजियों का आतिथ्य) —इसका अर्थ यह है कि हाजियों के लिए आतिथ्य के रूप में खाना तैयार किया जाता था। इस उद्देश्य के लिए क़ुसई ने क़ुरैश पर एक ख़ास रक़म तै कर रखी थी जो हज के मौसम में क़ुसई के पास जमा की जाती थी। क़ुसई इस रक़म से हाजियों के लिए खाना तैयार कराता था। जो लोग तंगहाल होते या जिनके पास धन-दौलत न होता, वे यहीं खाना खाते थे।[1]

ये सारे पद क़ुसई को प्राप्त थे। क़ुसई का पहला बेटा अब्दुद्दार था, पर उसके बजाए दूसरा बेटा अब्दे मुनाफ़ क़ुसई के जीवन ही में नेतृत्व के स्थान पर पहुंच गया था, इसलिए क़ुसई ने अब्दुद्दार से कहा कि ये लोग यद्यपि नेतृत्व में तुम पर बाज़ी ले जा चुके हैं, पर मैं तुम्हें इनके बराबर करके रहूंगा, चुनांचे क़ुसई ने अपने सारे पद और ज़िम्मेदारियों की वसीयत अब्दुद्दार के लिए कर दी अर्थात् दारुन्नदवः की अध्यक्षता, ख़ाना काबा की निगरानी और देखभाल, झंडा बरदारी, पानी पिलाने का काम और हाजियों का सत्कार सब कुछ अब्दुद्दार को दे दिया। चूंकि किसी काम में क़ुसई का विरोध नहीं किया जाता था और न उसकी कोई बात रद्द की जाती थी, बल्कि उसका हर क़दम, उसके जीवन में भी और उसके मरने के बाद भी, पालन योग्य समझा जाता था, इसलिए उसके मरने के बाद उसके बेटों ने किसी विवाद के बिना उसकी वसीयत बाक़ी रखी। लेकिन जब अब्दे मुनाफ़ का देहान्त हो गया, तो उसके बेटों ने इन पदो के सिलसिले में अपने चचेरे भाइयों अर्थात् अब्दुद्दार की सन्तान से झगड़ना शुरू किया, इसके नतीजे में क़ुरैश दो गिरोह में बंट गये और क़रीब था कि दोनों में लड़ाई हो जाती, मगर फिर उन्होंने समझौते की आवाज़ उठाई

1. इब्ने हिशाम 1/130

और इन पदों को आपस में बांट लिया, चुनांचे हाजियों को पानी पिलाने और उनके आतिथ्य के काम बनू अब्दे मुनाफ़ को दिए गए और दारुन्नदवः की अध्यक्षता, झंडा-बरदारी और ख़ाना काबा की निगरानी और देखभाल बनू अब्दुद्दार के हाथ में रही। फिर बनू अब्द मुनाफ़ ने अपने प्राप्त पदों के लिए क़ुरआ डाला, तो क़ुरआ हाशिम बिन अब्दे मुनाफ़ के नाम निकला, इसलिए हाशिम ने ही अपनी ज़िंदगी भर पानी पिलाने और हाजियों के आतिथ्य की व्यवस्था की, अलबत्ता जब हाशिम का देहान्त हो गया तो उनके भाई मुत्तलिब ने गद्दी संभाली, पर मुत्तलिब के बाद उनके भतीजे अब्दुल मुत्तलिब बिन हाशिम ने—जो अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के दादा थे—यह पद संभाल लिया और उनके बाद उनकी सन्तान उनकी जानशीं हुई, यहां तक कि जब इस्लाम का युग आया तो हज़रत अब्बास बिन मुत्तलिब इस पद पर आसीन थे।[1]

इनके अलावा कुछ और पद भी थे, जिन्हें क़ुरैश ने आपस में बांट रखा था। इन पदों और इन दायित्वों द्वारा क़ुरैश ने एक छोटा-सा राज्य—बल्कि राज्य प्रशासन—बना रखा था, जिसकी सरकारी संस्थाएं और समितियां कुछ इस ढंग की थीं, जैसे आजकल संसदीय संस्थाएं और समितियां हुआ करती हैं। इन पदों का विवरण नीचे दिया जा रहा है—

1. **ईसार,** यानी फ़ालगिरी, भाग्य का पता लगाने के लिए बुतों के पास जो तीर रखे रहते थे, उनकी देखभाल और निगरानी। यह पद बनू जम्ह को प्राप्त था।

2. **अर्थ,** यानी बुतों का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए जो चढ़ावे और नज़राने चढ़ाए जाते थे, उनका प्रबन्ध करना, साथ ही झगड़ों और मुक़दमों का फ़ैसला करना। यह काम बनू सह्म को सौंपा गया था।

3. **शूरा,** यानी सलाहकार समिति, यह पद बनू असद को प्राप्त था।

4. **अशनाक़** यानी दियत और जुर्मानों की व्यवस्था, यह पद बनू तैम को मिला हुआ था।

5. **उक़ाब** यानी क़ौमी झंडाबरदारी, यह बनू उमैया का काम था।

6. **क़ुबा** यानी फ़ौज की व्यवस्था और घुड़सवारों का नेतृत्व। यह बनू मख़्ज़ूम के हिस्से में आया था।

7. **सफ़ारत** यानी राजदूतत्व, यह बनू अदी का पद था।[2]

---

1. इब्ने हिशाम 1/129-132, 137, 142, 178, 179
2. तारीख़ अर्ज़ुल क़ुरआन 2/104, 105, 106, लेकिन सही यह है कि झंडा बरदारी का हक़ बनू अब्दुद्दार का था, बनू उमैया को प्रधान सेनापति होने का अधिकार प्राप्त था।

शेष अरब सरदारियां

हम पीछे क़हतानी और अदनानी क़बीलों के देश-परित्याग का उल्लेख कर चुके हैं और बतला चुके हैं कि पूरा अरब देश इन क़बीलों में बंट गया था। इसके बाद इनकी सरदारियों और सत्ता का स्वरूप कुछ इस तरह बन गया था कि—

जो क़बीले हियरा के आस-पास आबाद थे, उन्हें हियरा राज्य के आधीन माना गया और जो क़बीले बादियतुश-शाम में (शाम के आस-पास) आबाद हो गए थे, उन्हें ग़स्सानी शासकों के आधीन मान लिया गया, पर पराधीनता नाम मात्र थी, व्यवहार में न थी। इन दो जगहों को छोड़कर अरब के भीतरी भाग में क़बीले हर पहलू से स्वतंत्र थे।

इन क़बीलों में सरदारी व्यवस्था चल रही थी। क़बीले ख़ुद अपना सरदार नियुक्त करते थे और इन सरदारों के लिए उनका क़बीला एक छोटा-सा राज्य हुआ करता था। राजनीतिक अस्तित्व और सुरक्षा का आधार, क़बीलेवार इकाई पर आधारित पक्षपात और अपने भू-भाग की रक्षा-सुरक्षा के संयुक्त हित पर स्थापित था।

क़बीलेवार सरदारों का स्थान अपनी क़ौम में बादशाहों जैसा था। क़बीला लड़ाई और संधि में बहरहाल अपने सरदार के फ़ैसले के आधीन होता था और किसी हाल में उससे अलग-थलग नहीं रह सकता था। सरदार अपने क़बीले का तानाशाह हुआ करता था, यहां तक कि कुछ सरदारों का हाल यह था कि अगर वे बिगड़ जाते, तो हज़ारों तलवारें यह पूछे बिना नंगी चमकने लगतीं कि सरदार के ग़ुस्से की वजह क्या है? फिर भी चूंकि एक ही कुंबे के चचेरे भाइयों में सरदारी के लिए संघर्ष भी हुआ करता था, इसलिए उसका तक़ाज़ा था कि सरदार अपनी क़बीलेवार जनता के प्रति उदारता दिखाए, ख़ूब माल ख़र्च करे, सत्कार करे, धैर्य व सहनशीलता से काम ले, वीरता का व्यावहारिक रूप प्रदर्शित करे और सम्मान की रक्षा करे, ताकि लोगों की नज़र में आम तौर से और कवियों की नज़र में ख़ास तौर से गुणों और विशेषताओं का योग बन जाए, (क्योंकि उस युग में कवि क़बीले का मुख हुआ करते थे) और इस तरह सरदार अपने लोगों में सर्वश्रेष्ठ बन जाए।

सरदारों के कुछ विशेष और प्रमुख अधिकार भी हुआ करते थे, जिनका एक कवि ने इस तरह उल्लेख किया है—

लकल मिरबाउ फ़ीना वस्सफ़ाया

व हुक्मु-क वन्नशीततु वल फ़ुज़ूलू

'हमारे बीच तुम्हारे लिए ग़नीमत के (लड़ाइयों में लूटे गए) माल का चौथाई है और चुनींदा माल है और वह माल है जिसका तुम फ़ैसला कर दो और जो राह चलते हाथ आ जाए और जो बंटने से बच रहे।'

मिरबाअ : ग़नीमत के माल का चौथाई हिस्सा,

सफ़ाया : वह माल, जिसे बंटने से पहले ही सरदार अपने लिए चुन ले,

नशीता : वह माल जो असल क़ौम तक पहुंचने से पहले रास्ते ही में सरदार के हाथ लग जाए,

फ़ुज़ूल : वह माल, जो बंटने के बाद बचा रहे और लड़ने वालों की संख्या में बराबर न बंटे, जैसे बंटने से बचे हुए ऊंट-घोड़े आदि ये तमाम प्रकार के माल क़बीला के सरदार का हक़ हुआ करते थे।

राजनीतिक स्थिति

अरब प्रायद्वीप की सरकारों और शासकों का उल्लेख हो चुका, अनुचित न होगा कि अब उनकी कुछ राजनीतिक परिस्थितियों का भी उल्लेख कर दिया जाए।

अरब प्रायद्वीप के वे तीनों सीमावर्ती क्षेत्र जो विदेशी राज्यों के पड़ोस में पड़ते थे, उनकी राजनीतिक स्थिति अशान्ति, बिखराव और पतन और गिरावट का शिकार थी। इंसान स्वामी और दास या शासक और शासित दो वर्गों में बंटा हुआ था। सारे लाभ—प्रमुखों, मुख्य रूप से विदेशी प्रमुखों को प्राप्त थे और सारा बोझ दासों के सर पर था। इसे और अधिक स्पष्ट शब्दों में यो कहा जा सकता है कि प्रजा वास्तव में एक खेती थी जो सरकार के लिए टैक्स और आमदनी जुटाती थी और सरकारें उसे अपने मज़े, भोग-विलास, सुख-वैभव और दमन-चक्र के लिए इस्तेमाल करती थीं। जनता अंधेरों में जीने के लिए हाथ पैर मारती रहती थी और उन पर हर ओर से अन्याय और अत्याचार की वर्षा होती रहती थी, पर वे शिकायत का एक शब्द भी अपने मुख पर नहीं ला सकते थे, बल्कि ज़रूरी था कि भांति-भांति का अपमान, अनादर और अत्याचार सहन करें और ज़ुबान बन्द रखें, क्योंकि सरकार दमनकारी थी और मानव-अधिकार नाम की किसी चीज़ का कोई अस्तित्व न था।

इन क्षेत्रों के पड़ोस में रहने वाले क़बीले अनिश्चितता के शिकार थे। उन्हें स्वार्थ और इच्छाएं इधर से उधर फेंकती रहती थीं, कभी वे इराक़ियों के समर्थक बन जाते थे और कभी शामियों के स्वर में स्वर मिलाते थे।

जो क़बीले अरब के भीतर आबाद थे, उनके भी जोड़ ढीले और बिखरे हुए थे। हर ओर क़बीलागत झगड़ों, नस्ली बिगाड़ और धार्मिक मतभेदों का बाज़ार

गर्म था, जिसमें हर क़बीले के लोग हर हाल में अपने-अपने क़बीलों का साथ देते थे, चाहे वह सही हो या ग़लत। एक कवि इसी भावना को इस तरह व्यक्त करता है—

'मैं भी तो क़बीला गज़ीया ही का एक व्यक्ति हूं। अगर वह ग़लत राह पर चलेगा, तो मैं भी ग़लत राह पर चलूंगा और अगर वह सही राह पर चलेगा, तो मैं भी सही राह पर चलूंगा।'

अरब के भीतरी भाग में कोई बादशाह न था, जो उनकी आवाज़ को ताक़त पहुंचाता, और न कोई रुजू होने की जगह थी जिसकी ओर परेशानियों में रुजू किया जाता और जिस पर आड़े वक़्तों में भरोसा किया जाता।

हां, हिजाज़ की सरकार को मान-सम्मान की दृष्टि से यक़ीनन देखा जाता था और उसे धर्म-केन्द्र का रखवाला भी माना जाता था। यह सरकार वास्तव में एक तरह से सांसारिक नेतृत्व और धार्मिक अगुवाई का योग थी। इसे अरबों पर धार्मिक नेतृत्व के नाम से प्रभुत्व प्राप्त था और हरम और हरम के आस-पास के क्षेत्रों में उसका विधिवत शासन था। वहीं वह बैतुल्लाह के दर्शकों की ज़रूरतों की व्यवस्था और इब्राहीमी शरीअत के आदेशों को लागू करती थी और उसके पास संसदीय संस्थाओं जैसी संस्थाएं और समितियां भी थीं, लेकिन यह शासन इतना कमज़ोर था कि अरब के भीतरी भाग की ज़िम्मेदारियों का बोझ उठाने की ताक़त न रखती थी, जैसा कि हब्शियों के हमले के मौक़े पर ज़ाहिर हुआ।

अरब विचार-धाराएं और धर्म

अरब के सामान्य निवासी हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम के धर्म-प्रचार व प्रसार के नतीजे में दीने इब्राहीमी की पैरवी करने वाले थे, इसलिए सिर्फ़ अल्लाह की इबादत करते थे और तौहीद (एकेश्वरवाद) पर चलते थे, लेकिन समय बीतने के साथ-साथ उन्होंने अल्लाह के आदेशों-निर्देशों का एक हिस्सा भुला दिया, फिर भी उनके भीतर तौहीद और कुछ दीने इब्राहीमी के तौर-तरीक़े बाक़ी रहे, यहां तक कि बनू ख़ुज़ाआ का सरदार अम्र बिन लुह्य प्रकट हुआ। उसका लालन-पालन धार्मिक गुणों, सदक़ा व ख़ैरात और धार्मिक मामलों से गहरी दिलचस्पी के साथ हुआ था, इसलिए लोगों ने उसे मुहब्बत की नज़र से देखा और उसे महान विद्वान और अल्लाह वाला समझकर उसका अनुपालन किया। फिर उस व्यक्ति ने शाम देश का सफ़र किया, देखा तो वहां मूर्तियों की पूजा की जा रही थी। उसने समझा कि यह भी बेहतर और सही है, इसलिए कि शाम देश पैग़म्बरों की धरती और आसमानी किताबों के उतरने की जगह था, चुनांचे वह अपने साथ हुबल बुत भी ले आया और उसे ख़ाना-काबा में गाड़ दिया और मक्का वालों को अल्लाह के साथ शिर्क की दावत दी। मक्का वालों ने मान लिया। इसके बाद बहुत जल्द हिजाज़ के निवासी भी मक्का वालों के पद-चिह्नों पर चल पड़े, क्योंकि वे बैतुल्लाह के वाली (देख-रेख करने वाले) और हरम के निवासी थे।[1]

इस तरह अरब में बुत परस्ती (मूर्ति पूजा) का रिवाज चल पड़ा।

हुबल लाल अक़ीक़ (पत्थर) से तराशा गया था। मानव-रूप में यह मूर्ति थी। दाहिना हाथ टूटा हुआ था। क़ुरैश को वह इसी हालत में मिला था। उन्होंने उसकी जगह सोने का हाथ लगा दिया। यह मुश्रिकों का पहला बुत था और इनके नज़दीक सबसे महान और पावन मूर्ति थी।[2]

हुबल के अलावा अरब के सबसे पुराने बुतों में से मनात है। यह हुज़ैल और ख़ुज़ाआ का बुत था और लाल सागर के तट पर क़ुदैद के निकट मुसल्लल में गड़ा हुआ था। मुसल्लल एक पहाड़ी घाटी है, जिससे कुदीद की तरफ़ उतरते हैं।[3]

इसके बाद तायफ़ में लात नामक बुत वजूद में आया। यह सक़ीफ़ का बुत

---

1. मुख़्तसर सीरतुर्रसूल, लेखक शेख़ मुहम्मद बिन अब्दुल वह्हाब नज्दी रह०, पृ० 12
2. इब्ने कलबी : किताबुल अस्नाम, पृ० 28,
3. सहीह बुख़ारी 1/222, फ़त्हुल बारी 3/499, 8/613,

था और वर्तमान मस्जिद ताइफ़ के बाएं मनारे की जगह पर था।[1] फिर नख़्ला की घाटी में ज़ाते इर्क़ से ऊपर उज़्ज़ा गाड़ा गया। यह क़ुरैश, बनू कनाना और दूसरे बहुत से क़बीलों का बुत था।[2] और ये तीनों अरब के सबसे बड़े बुत थे। इसके बाद हिजाज़ के हर क्षेत्र में शिर्क (बहुदेववाद) की अधिकता और बुतों की भरमार हो गई। कहा जाता है कि एक जिन्न अम्र बिन लुह्य के क़ब्ज़े में था। उसने बताया कि नूह की क़ौम के बुत—अर्थात वुद्द, सुआअ, यग़ूस, यऊक़ और नस्र जद्दा में दबे पड़े हैं। इस सूचना पर अम्र बिन लुह्य जद्दा गया और इन बुतों को खोद निकाला, फिर उन्हें तहामा लाया और जब हज का ज़माना आया, तो उन्हें विभिन्न क़बीलों के हवाले किया। ये क़बीले इन बुतों को अपने-अपने क्षेत्रों में ले गए। चुनांचे वुद्द को बनू कल्ब ले गए और उसे इराक़ के क़रीब शाम की धरती पर दौमतुल जन्दल के इलाक़े में जर्श नामी जगह पर लगा दिया। सुवा को हुज़ैल बिन मुदरका ले गए और उसे हिजाज़ की धरती पर मक्का के क़रीब, तटवर्ती क्षेत्र में रबात नामी जगह पर गाड़ दिया। यग़ूस को बनू मुराद का एक क़बीला बनू ग़तीफ़ ले गया और सबा के इलाक़े में जर्फ़ नामी जगह पर सेट किया। यऊक़ को बनू हमदान ले गए और यमन की एक बस्ती ख़ैवान में लगाया। ख़ैवान मूलतः क़बीला हमदान की एक शाखा है। नस्र को हिमयर क़बीले की एक शाखा आले ज़िलकिलाअ ले गए और हिमयर के इलाक़े में सेट किया।[3]

फिर अरब ने इन मूर्तियों के थान बनाए, जिनका काबे की तरह आदर करते थे। उन्होंने इन थानों के लिए पुजारी और सेवक भी नियुक्त कर रखे थे और काबे की तरह इन थानों के लिए भी चढ़ावे और भेंट चढ़ाए जाते थे, अलबत्ता काबे को इन थानों में श्रेष्ठ मानते थे।[4]

फिर दूसरे क़बीलों ने भी यही रीति अपनाई और अपने लिए मूर्तियां और थान बनाए। चुनांचे क़बीला दौस, ख़सअम और बुजैला ने मक्का और यमन के दर्मियान यमन की अपनी धरती में तबाला नामी जगह पर ज़ुलख़लसा नाम का बुत और बुतख़ाना बनाया। बनू तै और उनके अड़ोस-पड़ोस के लोगों ने अजमा और सलमा बनू तै की दो पहाड़ियों के बीच फ़ल्स नाम के दो बुत गाड़ दिए।

---

1. इब्ने कल्बी: किताबुल अस्नाम, पृ० 16
2. वही, पृ० 18, 19, फ़त्हुल बारी 8/668 तफ़्सीर क़ुर्तबी 17/99
3. सहीह बुख़ारी, हदीस न० 4920, (फ़त्हुल बारी 6/549, 8/661, मुहम्मद बिन हबीब, पृ० 327, 328, किताबुल अस्नाम, पृ० 9-11, 56-58,
4. इब्ने हिशाम 1/83,

यमन और हिमयर वालों ने सनआ में रियाम नाम की मूर्तियां और थान बनाए। बनू तमीम की शाखा बनू रबीआ बिन काब ने रज़ा नामी बुतख़ाना बनाया और बक्र व तग़लब और अयाद ने सनदाद में काबात बनाया।[1]

क़बीला दौस का एक बुत ज़ुलकफ़्फ़ैन कहलाता था, बक्र, मालिक और मलकान अबनाए कनाना के क़बीलों का एक बुत साद कहलाता था। बनू अज़रा का एक बुत शम्स कहलाता था[2], और ख़ौलान के एक बुत का नाम अमयानस था।[3]

तात्पर्य यह कि इस तरह अरब प्रायद्वीप में हर तरफ़ बुत और बुतख़ाने फैल गए, यहां तक कि हर-हर क़बीले, फिर हर-हर घर में एक बुत हो गया। मस्जिदे हराम भी बुतों से भर दी गई। चुनांचे जब अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मक्का पर विजय प्राप्त की तो बैतुल्लाह के गिर्द ३६० बुत थे। आप उन्हें एक छड़ी से ठोकर मारते जा रहे थे और वे गिरते जा रहे थे। फिर आपने हुक्म दिया और उन सारे बुतों को मस्जिदे हराम से बाहर निकाल कर जला दिया गया। इनके अलावा ख़ाना-काबा में भी बुत और तस्वीरें थीं। एक बुत हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की शक्ल पर और एक बुत हज़रत इस्माईल अलैहिस्सलाम की शक्ल पर बना हुआ था और दोनों के हाथ में फ़ाल निकालने के तीर थे। मक्का-विजय के दिन ये बुत भी तोड़ दिए गए और ये तस्वीरें मिटा दी गईं।[4]

लोगों की गुमराही इसी पर बस न थी, बल्कि अबू रजा अतारदी रज़ियल्लाहु अन्हु का बयान है कि हम लोग पत्थर पूजते थे। जब पहले से अच्छा कोई पत्थर मिल जाता, तो पहला पत्थर फेंक कर उसे ले लेते। पत्थर न मिलता तो मिट्टी की एक छोटी सी ढेरी बनाते, उस पर बकरी लाकर दूहते, फिर उसका तवाफ़ करते।[5]

सार यह कि शिर्क और बुतपरस्ती अज्ञानियों के लिए दीन (धर्म) का सबसे बड़ा प्रतीक बन गई थी जिन्हें इस पर गर्व था कि वे हज़रत इब्राहीम के दीन पर हैं।

बाक़ी रही यह बात कि उन्हें शिर्क और बुतपरस्ती का विचार कैसे हुआ तो इसकी बुनियाद यह थी कि जब उन्होंने देखा कि फ़रिश्ते, पैग़म्बर, नबी, वली,

---

1. इब्ने हिशाम, 1/78, 89, तफ़्सीर इब्ने कसीर, सूरः नूह
2. तारीख़ याक़ूबी 1/255
3. इब्ने हिशाम 1/80
4. सहीह बुख़ारी, अहादीस नम्बर, 1610, 2478, 335, 3352, 4287, 4288, 4720
5. सहीह बुख़ारी, अहादीस नम्बर 4376

परहेज़गार और भले लोग अच्छे काम अंजाम देने वाले अल्लाह के सबसे क़रीबी बन्दे हैं, अल्लाह के नज़दीक उनका बड़ा दर्जा है, उनके हाथ पर मोजज़े और करामतें ज़ाहिर होती हैं, तो उन्होंने यह समझा कि अल्लाह ने अपने इन नेक बन्दों को कुछ ऐसे कामों में क़ुदरत और तसर्रुफ़ का अख़्तियार दे दिया है जो अल्लाह के साथ ख़ास हैं और ये लोग अपने इस तसर्रुफ़ की वजह से और उनके नज़दीक उनका जो मान-सम्मान है, उसकी वजह से इसके अधिकारी हैं कि अल्लाह और उसके आम बन्दों के दर्मियान वसीला और वास्ता हों, इसलिए उचित नहीं कि कोई आदमी अपनी ज़रूरत अल्लाह के हुज़ूर इन लोगों के वसीले के बग़ैर पेश करे, क्योंकि ये लोग अल्लाह के नज़दीक उसकी सिफ़ारिश करेंगे। और अल्लाह जाह व मर्तबे की वजह से उनकी सिफ़ारिश रद्द नहीं करेगा। इसी तरह मुनासिब नहीं कि कोई आदमी अल्लाह की इबादत उन लोगों के वसीले के बग़ैर करे, क्योंकि ये लोग अपने मर्तबे की बदौलत उसे अल्लाह के क़रीब कर देंगे।

जब लोगों में इस विचार ने जड़ पकड़ लिया और यह विश्वास मन में बैठ गया तो उन्होंने इन फ़रिश्तों, पैग़म्बरों और औलिया वग़ैरह को अपना वली बना लिया और उन्हें अपने और अल्लाह के दर्मियान वसीला ठहरा लिया और अपने विचार में जिन साधनों से उनका क़ुर्ब मिल सकता था, उन साधनों से क़ुर्ब हासिल करने की कोशिश की। चुनांचे अधिकतर की मूर्तियां और स्टेचू गढ़े, जो उनकी वास्तविक या काल्पनिक शक्लों के अनुसार थे। इन्हीं स्टेचूज़ को मूर्ति या बुत कहा जाता है।

बहुत से ऐसे भी थे जिनका कोई बुत नहीं गढ़ा गया, बल्कि उनकी क़ब्रों, मज़ारों, निवास स्थनों, पड़ावों और आराम की जगहों को पवित्र स्थान बना दिया गया। और उन्हीं पर नज़्र, नियाज़ और चढ़ावे पेश किए जाने लगे और उनके सामने झुकाव, आजिज़ी और इताअत का काम होने लगा। इन मज़ारों, क़ब्रों, आरामगाहों और निवास-स्थानों को अरबी भाषा में औसान कहा जाता है। जिनका अर्थ है बुत और उर्दू ज़ुबान में इसके लिए सबसे क़रीबी लफ़्ज़ है दरगाह व ज़ियारत और दरबार व सरकार है।

मुश्रिकों के नज़दीक इन बुतों और मज़ारों वग़ैरह की पूजा के लिए कुछ ख़ास तरीक़े और रस्म व रिवाज भी थे जो अधिकतर अम्र बिन लुह्य की गढ़े हुए थे, अज्ञानी समझते थे कि अम्र बिन लुह्य की ये नई गढ़ी चीज़ें दीने इब्राहीमी में तब्दीली नहीं, बल्कि बिदअते हसना (नई अच्छी बातें) हैं। नीचे हम अज्ञानियों के भीतर चल रही बुत परस्ती की कुछ महत्वपूर्ण परंपराओं का उल्लेख

कर रहे हैं—

1. अज्ञानता-युग के मुश्रिक बुतों के पास मुजाविर (सेवक-पुजारी) बनकर बैठते थे, उनकी पनाह ढूंढते थे, उन्हें ज़ोर-ज़ोर से पुकारते थे और अपनी ज़रूरतों के लिए उन्हें पुकारते और उनसे दुआएं करते थे और समझते थे कि वे अल्लाह से सिफ़ारिश करके हमारी मुराद (कामना) पूरी करा देंगे।

2. बुतों का हज व तवाफ़ करते थे, उनके सामने विनम्र भाव से पेश आते थे और उन्हें सज्दा करते थे।

3. बुतों के लिए नज़राने और क़ुर्बानियां पेश करते और क़ुर्बानी के इन जानवरों को कभी बुतों के आस्तानों पर ले जाकर उनका बध करते और कभी किसी भी जगह वध कर लेते थे, मगर बुतों के नाम पर बध करते थे। बध के इन दोनों रूपों का उल्लेख अल्लाह ने क़ुरआन में किया है। इर्शाद है—

'वे जानवर भी हराम हैं, जो थानों पर बध करके चढ़ाए गए हों।' (5 : 3)

दूसरी जगह इर्शाद है—

'उस जानवर का मांस मत खाओ, जिस पर अल्लाह का नाम न लिया गया हो।' (5 : 121)

4. बुतों से सान्निध्य प्राप्त करने का एक तरीक़ा यह भी था कि मुश्रिक अपनी सोच के मुताबिक़ अपने खाने-पीने की चीज़ों और अपनी खेती और चौपाए की पैदावार का एक भाग बुतों के लिए ख़ास कर देते थे। इस सिलसिले में उनकी दिलचस्प रीति यह थी कि वे अल्लाह के लिए भी अपनी खेती और जानवरों की पैदावार का एक हिस्सा ख़ास करते थे, फिर विभिन्न कारणों से अल्लाह का हिस्सा तो बुतों को दे देते थे, लेकिन बुतों का हिस्सा किसी भी हाल में अल्लाह को नहीं देते थे। अल्लाह का इर्शाद है—

'अल्लाह ने जो खेती और चौपाए पैदा किए हैं, उसका एक भाग अल्लाह के लिए मुक़र्रर किया और कहा, यह अल्लाह के लिए है—उनके विचार से—और यह हमारे शरीकों के लिए है। तो जो उनके शरीकों के लिए होता है, वह तो अल्लाह तक नहीं पहुंचता, मगर जो अल्लाह के लिए होता है वह उनके शरीकों तक पहुंच जाता है, कितना बुरा है वह फ़ैसला जो ये लोग करते हैं।' (6 : 136)

5. बुतों के सान्निध्य का एक तरीक़ा यह भी था कि वे मुश्रिक खेती और चौपाए के ताल्लुक़ से विभिन्न प्रकार की मन्नतें मानते थे, नई-नई बातें और रस्में गढ़ रखी थीं। अल्लाह का इर्शाद है—

'उन मुश्रिकों ने कहा कि ये चौपाए और खेतियां निषिद्ध हैं, जिनकी पीठ

हराम की गई है। न इन पर सवारी की जा सकती है, न सामान लादा जा सकता है) और कुछ चौपाए ऐसे हैं, जिन पर ये लोग अल्लाह पर झूठ गढ़ते हुए—अल्लाह का नाम नहीं लेते।'

(6 : 138)

6. इन्हीं जानवरों में बहीरा, साइबा, वसीला और हामी थे।

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब का बयान है कि बहीरा वह जानवर है, जिसका दूध बुतों के लिए ख़ास कर लिया जाता था और उसे कोई न दूहता था और साइबा वह जानवर है जिसे अपने माबूदों के नाम पर छोड़ते, इस पर कोई चीज़ लादी न जाती थी। वसीला उस जवान ऊंटनी को कहा जाता है जो पहली बार की पैदाइश में मादा बच्चा जनती, फिर दूसरी बार की पैदाइश में भी मादा बच्चा ही जनती। चुनांचे उसे इसलिए बुतों के नाम पर छोड़ दिया जाता कि उसने एक मादा बच्चे को दूसरे मादा बच्चे से जोड़ दिया। दोनों के बीच में कोई नर बच्चा पैदा न हुआ। हामी उस नर ऊंट को कहते जो गिनती की कुछ जुफ़्तियां करता (यानी दस ऊंटनियां) जब यह अपनी जुफ़्तियां पूरी कर लेता और हर एक से मादा बच्चा पैदा हो जाता, तो उसे बुतों के लिए छोड़ देते और लादने से माफ़ रखते, चुनांचे उस पर कोई चीज़ लादी न जाती और उसे हामी कहते।[1]

इब्ने इस्हाक़ कहते हैं कि बहीरा साइबा की बच्ची को कहा जाता है और साइबा उस ऊंटनी को कहा जाता है जिससे दस बार लगातार मादा बच्चे पैदा हों, बीच में कोई नर न पैदा हो। ऐसी ऊंटनी को आज़ाद छोड़ दिया जाता था, उस पर सवारी नहीं की जाती थी, उसके बाल नहीं काटे जाते थे और मेहमान के सिवा कोई उसका दूध नहीं पीता था। उसके बाद यह ऊंटनी, जो मादा जनती, उसका कान चीर दिया जाता और उसे भी उसकी मां के साथ आज़ाद छोड़ दिया जाता, उस पर सवारी न की जाती, उसका बाल न काटा जाता और मेहमान के सिवा कोई उसका दूध न पीता। यही बहीरा है और इसकी मां साइबा है।

वसीला उस बकरी को कहा जाता था जो पांच बार बराबर दो-दो मादा बच्चे जनती। (अर्थात् पांच बार में दस मादा बच्चे हों) बीच में कोई नर न पैदा होता। इस बकरी को इसलिए वसीला कहा जाता था कि वह सारे मादा बच्चों को एक दूसरे से जोड़ देती थी। इसके बाद उस बकरी से जो बच्चे पैदा होते, उन्हें सिर्फ़ मर्द खा सकते थे, औरतें नहीं खा सकती थीं, अलबत्ता अगर कोई बच्चा मुर्दा पैदा होता तो उसको मर्द-औरत सभी खा सकते थे।

---

1. सहीह बुख़ारी हदीस न० 4623, फ़त्हुल बारी 8/133, इब्ने हिब्बान 8/53 (ब्रेकेट का वाक्य इब्ने हिब्बान का है)

हामी उस नर ऊंट को कहते थे, जिसके सहवास से लगातार दस मादा बच्चे पैदा होते, बीच में कोई नर न पैदा होता। ऐसे ऊंट की पीठ मज़बूत कर दी जाती थी, न उस पर सवारी की जाती थी, न उसका बाल काटा जाता था, बल्कि उसे ऊंटों के रेवड़ में जोड़ा खाने के लिए आज़ाद छोड़ दिया जाता था और इसके सिवा उससे कोई दूसरा फ़ायदा न उठाया जाता था। अज्ञानता-युग की बुत परस्ती के इन तरीक़ों का खंडन करते हुए अल्लाह ने फ़रमाया—

'अल्लाह ने न कोई बहीरा, न कोई साइबा, न कोई वसीला और न कोई हामी बनाया है, लेकिन जिन लोगों ने कुफ़्र किया, वे अल्लाह पर झूठ गढ़ते हैं और उनमें से अक्सर अक़्ल नहीं रखते।' (5 : 103)

एक दूसरी जगह फ़रमाया—

'इन (मुश्रिकों) ने कहा कि इन चौपायों के पेट में जो कुछ है, वह ख़ालिस हमारे मर्दों के लिए है और हमारी औरतों पर हराम है। अलबत्ता अगर वह मुर्दा हो, तो उसमें मर्द-औरत सब शरीक हैं।' (6 : 139)

चौपायों की ऊपर लिखी गई क़िस्में अर्थात बहीरा, साइबा आदि के कुछ दूसरे अर्थ भी बयान किए गए हैं[1], जो इब्ने इसहाक़ की उल्लिखित व्याख्या से कुछ भिन्न हैं।

हज़रत सईद बिन मुसय्यिब रह० का बयान गुज़र चुका है कि ये जानवर उनके ताग़ूतों (ख़ुदा के सरकशों) के लिए थे[2] सहीह बुख़ारी व मुस्लिम में है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मैंने अम्र बिन आमिर लुही ख़ुज़ाई को देखा कि वह जहन्नम में अपनी आंतें घसीट रहा था।[3] क्योंकि यह पहला आदमी था जिसने दीने इब्राहीमी को तब्दील किया, बुत गाड़े, साइबा छोड़े, बहीरा बनाए, वसीला ईजाद किया और हामी मुक़र्रर किए।[4]

---

1. सीरत इब्ने हिशाम 1/89, 90
2. सहीह बुख़ारी, 1/499
3. सहीह बुख़ारी हदीस न० 1212, फ़त्हुल बारी 3/98, हदीस न० 3521, फ़त्हुल बारी 6/633, हदीस न० 4623, फ़त्हुल बारी 8/132
4. इसे हाफ़िज़ ने फ़त्हुल बारी 6/634 में इब्ने इस्हाक़ से नक़ल किया है। इसी तरह कल्बी ने अस्नाम में और इब्ने हबीब ने अल मुनमिक़ में दर्ज किया है। इसका कुछ हिस्सा सहीह बुख़ारी में मरफ़ूअन मौजूद है, कुछ को हाफ़िज ने सहीह मुस्लिम की तरफ़ अबू सालेह अन् अबी हुरैरह की रिवायत से मंसूब किया है। देखिए फ़त्हुल बारी 8/285,

अरब अपने बुतों के साथ यह सब कुछ इस श्रद्धा के साथ करते थे कि ये बुत उन्हें अल्लाह से क़रीब कर देंगे और अल्लाह के हुज़ूर उनकी सिफ़ारिश कर देंगे। चुनांचे क़ुरआन मजीद में बताया गया है कि मुश्रिक कहते थे—

'हम उनकी पूजा केवल इसलिए कर रहे हैं कि वे हमें अल्लाह के क़रीब कर दें।'

(39 : 3)

'ये मुश्रिक अल्लाह के सिवा उनकी पूजा करते हैं जो उन्हें न फ़ायदा पहुंचा सकें, न नुक़्सान और कहते हैं कि ये अल्लाह के पास हमारे सिफ़ारिशी हैं।'

(10 : 18)

अरब के मुश्रिक 'अज़लाम' अर्थात फ़ाल (शकुन) के तीर भी इस्तेमाल करते थे। (अज़लाम, ज़लम का बहुवचन है और ज़लम उस तीर को कहते हैं, जिसमें पर न लगे हों) फ़ाल निकालने के लिए इस्तेमाल होने वाले ये तीर तीन प्रकार के होते थे—

एक वे जिन पर केवल 'हां' या 'नहीं' लिखा होता था। इस प्रकार के तीर यात्रा और विवाह आदि जैसे कामों के लिए इस्तेमाल किए जाते थे। अगर फ़ाल में 'हां' निकलता तो चाहा गया काम कर डाला जाता, अगर 'नहीं' निकलता तो साल भर के लिए स्थगित कर दिया जाता और अगले साल फिर फ़ाल निकाला जाता।

फ़ाल निकालने वाले तीरों का दूसरा प्रकार वह था जिन पर पानी और दियत आदि अंकित होते थे।

और तीसरा प्रकार वह था, जिस पर यह अंकित होता था कि 'तुम में से है' या 'तुम्हारे अलावा से है' या 'मिला हुआ है'। इन तीरों का काम यह था कि जब किसी के नसब (वंश) में सन्देह होता तो उसे एक सौ ऊंटों सहित हुबल के पास ले जाते। ऊंटों को तीर वाले महन्त के हवाले करते और वह तमाम तीरों को एक साथ मिलाकर घुमाता, झिंझोड़ता, फिर एक तीर निकालता। अब अगर यह निकलता कि 'तुम में से है', तो वह उनके क़बीले का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति मान लिया जाता और अगर यह निकलता कि 'तुम्हारे अलावा से है' तो 'हलीफ़' (मित्र) माना जाता और अगर यह निकलता कि 'मिला हुआ है' तो उनके अन्दर अपनी हैसियत बाक़ी रखता, न क़बीले का व्यक्ति माना जाता, न हलीफ़।[1]

इसी से मिलता-जुलता एक रिवाज मुश्रिकों में जुआ खेलने और जुए के तीर इस्तेमाल करने का था। इसी तीर की निशानदेही पर वे जुए का ऊंट ज़िब्ह करके उसका मांस बांटते थे।

---

1. फ़त्हुल बारी 8/277, इब्ने हिशाम 1/152, 153,

इसका तरीक़ा यह था कि जुआ खेलने वा । एक ऊंट उधार ख़रीदते और ज़िब्ह करके उसे दस या अठाईस हिस्सों में बांट देते, फिर तीरों से क़ुरआ निकालते। किसी तीर पर जीत का निशान बना होता और कोई तीर बे-निशान होता। जिसके नाम पर जीत के निशान वाला तीर निकलता, वह तो कामियाब माना जाता और अपना हिस्सा लेता और जिसके नाम पर बे-निशान तीर निकलता, उसे क़ीमत देनी पड़ती।[1]

अरब के मुश्रिक काहिनों, अर्राफ़ों और नजूमियों (ज्योतिषियों) की ख़बरों में भी आस्था रखते थे।

काहिन उसे कहते हैं जो आने वाली घटनाओं की भविष्यवाणी करे और छिपे रहस्यों को जानने का दावा करे। कुछ काहिनों का यह भी दावा था कि एक जिन्न उनके क़ब्ज़े में है, जो उन्हें ख़बरें पहुंचाता रहता है और कुछ काहिन कहते थे कि उन्हें ऐसा विवेक दिया गया है, जिससे वे ग़ैब का पता लगा लेते हैं।

कुछ इस बात के दावेदार थे कि जो आदमी उनसे कोई बात पूछने आता है, उसके कहने-करने से या उसकी हालत से, कुछ कारणों के ज़रिए वे घटना-स्थल का पता लगा लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति को अर्राफ़ कहा जाता था, जैसे वह व्यक्ति जो चोरी के माल, चोरी की जगह और गुमशुदा जानवर आदि का पता-ठिकाना बताता।

नजूमी उसे कहते हैं जो तारों पर विचार करके और उनकी चाल और समय का हिसाब लगाकर पता लगाता है कि दुनिया में आगे क्या परिस्थितियां जन्म लेंगी और क्या घटनाएं घटित होंगी।[2] इन नजूमियों की ख़बरों को मानना वास्तव में तारों पर ईमान लाना है और तारों पर ईमान लाने की एक शक्ल यह भी थी कि अरब के मुश्रिक नक्षत्रों पर ईमान रखते थे और कहते थे कि हम पर फ़्लां और फ़्लां नक्षत्र से वर्षा हुई है।[3]

मुश्रिकों में अपशकुन का भी रिवाज था। उसे अरबी में 'तियरा' कहते हैं। इसकी शक्ल यह थी कि मुश्रिक किसी चिड़िया या हिरन के पास जाकर उसे भगाते थे। फिर अगर वह दाहिनी ओर भागता तो उसे अच्छाई और सफलता की

---

1. याक़ूबी ने अपने इतिहास में कुछ अंशों में मतभेद के साथ सविस्तार लिखा है, 1/259, 261
2. अल-लिसान और दूसरे शब्द-कोष
3. देखिए सहीह बुख़ारी, हदीस न० 846, 1038, 4771, 3041, 750 सहीह मुस्लिम मय शरह नववी : किताबुल ईमान, बाब बयान 'क-फ़्र-र मन क़ा-ल मुतरुना बिन्नौइ 1/95

निशानी समझ कर अपना काम कर गुज़रते और अगर बाईं ओर भागता तो उसे अपशकुन समझ कर अपने काम से रुक जाते। इसी तरह अगर कोई चिड़िया या जानवर रास्ता काट देता तो उसे भी अपशकुन समझते।

इसी से मिलती-जुलती एक हरकत यह भी थी कि मुश्रिक खरगोश के टख़ने की हड्डी लटकाते थे और कुछ दिनों, महीनों, जानवरों, घरों और औरतों को अपशकुन समझते थे। बीमारियों की छूत के क़ायल थे और आत्मा के उल्लू बन जाने में विश्वास करते थे अर्थात् उनकी आस्था थी कि जब तक जिसकी हत्या की गई है, उसकी हत्या का बदला न लिया जाए, उसे शान्ति नहीं मिलती और उसकी आत्मा उल्लू बनकर निर्जन स्थानों पर घूमती रहती है और 'प्यास-प्यास' या 'मुझे पिलाओ, मुझे पिलाओ' की आवाज़ लगाती रहती है। जब उसका बदला ले लिया जाता है, तो उसे राहत और शान्ति मिल जाती है।[1]

दीने इब्राहीमी में क़ुरैश की गढ़ी नई चीज़ें

ये थे अज्ञानियों के विश्वास और काम। इसके साथ ही इनके अन्दर दीने इब्राहीमी की कुछ बची-खुची चीज़ें भी थीं अर्थात् उन्होंने यह दीन पूरे तौर पर नहीं छोड़ा था, चुनांचे वे बैतुल्लाह का आदर और उसकी परिक्रमा करते थे, हज व उमरा करते थे, अरफ़ात व मुज़दलफ़ा में ठहरते थे और हद्यि के जानवरों की क़ुर्बानी करते थे, अलबत्ता उन्होंने इस दीने इब्राहीमी में बहुत-सी नई बातें गढ़कर शामिल कर दी थीं, जैसे—

क़ुरैश की एक नई बात यह थी कि वे कहते थे, हम हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की सन्तान हैं, हरम की देखभाल करने वाले, बैतुल्लाह के निगरां और मक्का के रहने वाले हैं, कोई व्यक्ति हमारे पद की बराबरी का नहीं और न किसी के अधिकार हमारे अधिकार जितने हैं—और इसी कारण ये अपना नाम हुम्स (वीर और गर्मजोश) रखते थे—इसलिए हमारे लिए उचित नहीं कि हम हरम की सीमाओं से बाहर जाएं, चुनांचे हज के दौरान ये लोग अरफ़ात नहीं जाते थे और न वहां से इफ़ाज़ा करते थे, बल्कि मुज़दलफ़ा ही में ठहर कर वहीं से इफ़ाज़ा कर लेते थे। अल्लाह ने इस नई बात को सुधारते हुए फ़रमाया—

'तुम लोग भी वहीं से इफ़ाज़ा करो, जहां से सारे लोग इफ़ाज़ा करते हैं।'[2]

(2 : 119)

1. सहीह बुख़ारी 2/851, 857 मय शरहें,
2. इब्ने हिशाम 1/199, सहीह बुख़ारी 1/226

उनकी एक नई बात यह भी थी कि वे कहते थे कि हुम्स (क़ुरैश) के लिए एहराम की हालत में पनीर और घी बनाना सही नहीं और न यह सही है कि बाल वाले घर (अर्थात कम्बल के ख़ेमे) में दाख़िल हों और न यह सही है कि छाया लेनी हो तो चमड़े के ख़ेमे के सिवा कहीं और छाया लें।[1]

उनकी एक नई बात यह भी थी कि वे कहते थे कि हरम के बाहर के लोग हज या उमरा करने के लिए आएं और हरम के बाहर से खाने की कोई चीज़ लेकर आएं तो इसका उनके लिए खाना सही नहीं।[2]

एक नई बात यह भी कि उन्होंने हरम के बाहर के निवासियों को हुक्म दे रखा था कि वे हरम में आने के बाद पहला तवाफ़ (परिक्रमा) हुम्स से प्राप्त कपड़ों ही में करें। चुनांचे अगर उनका कपड़ा न प्राप्त होता, तो मर्द नंगे तवाफ़ करते और औरतें अपने सारे कपड़े उतारकर सिर्फ़ एक छोटा-सा खुला हुआ कुरता पहन लेतीं और उसी में तवाफ़ करतीं और तवाफ़ के दौरान ये पद पढ़ती जातीं—

'आज कुछ या कुल गुप्तांग खुल जाएगा, लेकिन जो खुल जाए, मैं उसे (देखना) हलाल नहीं क़रार देती।'

अल्लाह ने इस बेकार-सी चीज़ की समाप्ति के लिए फ़रमाया—

'ऐ आदम के बेटो! हर मस्जिद के पास अपनी ज़ीनत अख़्तियार कर लिया करो।'

(7 : 31)

बहरहाल अगर कोई औरत या मर्द श्रेष्ठ और उच्च बनकर, हरम के बाहर से लाए हुए अपने ही कपड़ों में तवाफ़ कर लेता, तो तवाफ़ के बाद इन कपड़ों को फेंक देता, उससे न ख़ुद फ़ायदा उठाता, न कोई और।[3]

क़ुरैश की एक नई बात यह भी थी कि वे एहराम की हालत में घर के भीतर दरवाज़े से दाख़िल न होते थे, बल्कि घर के पिछवाड़े एक बड़ा-सा सूराख बना लेते और उसी से आते-जाते थे और अपने इस उजड्डपने को नेकी समझते थे। क़ुरआन ने इससे भी मना फ़रमाया। (देखिए, 2 : 189)

यही दीन—अर्थात शिर्क व बुत परस्ती और अंधविश्वास और व्यर्थ के कामों पर आधारित विश्वास व कार्य वाला दीन—सामान्य अरब वासियों का दीन था।

---

1. इब्ने हिशाम 1/202
2. वही, वही
3. वही, 1/202, 203, सहीह बुख़ारी 1/226

इसके अलावा अरब प्रायद्वीप के विभिन्न भागों में यहूदी, ईसाई, मजूसी और साबी धर्मावलम्बियों ने भी पनपने के अवसर प्राप्त कर लिए थे, इसलिए इनका ऐतिहासिक स्वरूप भी संक्षेप में पेश किया जा रहा है।

अरब प्रायद्वीप में यहूदियों के कम से कम दो युग हैं।

पहला युग उस समय से ताल्लुक़ रखता है जब फलस्तीन में बाबिल और आशूर के राज्यों की जीतों की वजह से यहूदियों को देश-परित्याग करना पड़ा। इस राज्य के दमन-चक्र और बख़्ते नस्र के हाथों यहूदी बस्तियों की तबाही व वीरानी, उनके हैकल की बर्बादी और उनके बहुसंख्य के देश-निकाला दिए जाने का नतीजा यह हुआ कि यहूदियों का एक गिरोह फ़लस्तीन छोड़ कर हिजाज़ के उत्तरी भागों में जा बसा।[1]

दूसरा युग उस समय शुरू होता है जब टाइटस रूमी के नेतृत्व में सन् 70 ई० में रूमियों ने फ़लस्तीन पर क़ब्ज़ा कर लिया। इस अवसर पर रूमियों के हाथों यहूदियों की पकड़-धकड़ और उनके हैकल की बरबादी का नतीजा यह हुआ कि अनेक यहूदी क़बीले हिजाज़ भाग आए और यसरिब, ख़ैबर और तैमा में आबाद होकर यहां अपनी विधिवत आबादियां बसा लीं और क़िले और गढ़ियां बना लीं। देश-निकाला पाए इन यहूदियों के ज़रिए अरब निवासियों में किसी क़दर यहूदी धर्म का भी रिवाज हुआ और उसे भी इस्लाम प्रकट होने से पहले और उसके आरंभिक युग की राजनीतिक घटनाओं में एक उल्लेखनीय हैसियत हासिल हो गई। इस्लाम के प्रकट होने के वक़्त प्रसिद्ध यहूदी क़बीले ये थे—ख़ैबर, नज़ीर, मुस्तलक़, क़ुरैज़ा और क़ैनुक़ाअ। सम्हूदी ने वफ़ाउल वफ़ा पृ० 116 में उल्लेख किया है कि यहूदी क़बीलों की तायदाद बीस से ज़्यादा थी।[2]

यहूदी मत को यमन में भी पलने-बढ़ने का मौक़ा मिला। यहां उसके फैलने की वजह तबान असद अबू कर्ब था। यह व्यक्ति लड़ाई लड़ता हुआ यसरिब पहुंचा, वहां यहूदी मत अपना लिया और बनू क़ुरैज़ा के दो यहूदी उलेमा को अपने साथ यमन ले आया और उनके ज़रिए यहूदी मत को यमन में विस्तार और फैलाव मिला। अबू कर्ब के बाद उसका बेटा यूसुफ़ ज़ूनवास यमन का हाकिम हुआ तो उसने यहूदी होने के जोश में नजरान के ईसाइयों पर हल्ला बोल दिया और उन्हें मजबूर किया कि यहूदी मत अपना लें। मगर उन्होंने इंकार कर दिया। इस पर ज़ूनवास ने खाई खुदवाई और उसमें आग जलवाकर बूढ़े-बच्चे,

1. क़ल्ब जज़ीरतुल अरब, पृ० 251
2. वही, वही और वफ़ाउल वफ़ा 1/165

मर्द-औरत सबको बिना किसी भेद-भाव के आग के अलाव में झोंक दिया। कहा जाता है कि इस दुर्घटना के शिकार होने वालों की तायदाद बीस से चालीस हज़ार के बीच थी। यह अक्तूबर 523 ई० की घटना है। क़ुरआन मजीद ने सूरः बुरूज में इसी दुर्घटना का उल्लेख किया है।[1]

जहां तक ईसाई मत का ताल्लुक़ है, तो अरब भू-भाग में यह हब्शी और रूमी क़ब्ज़ा करने वाले विजेताओं के साथ आया। हम बता चुके हैं कि यमन पर हब्शियों का क़ब्ज़ा पहली बार 340 ई० में हुआ लेकिन यह क़ब्ज़ा देर तक बाक़ी न रहा। यमनियों ने 370 ई० से 378 ई० के दौरान निकाल भगाया।[2] अलबत्ता इस बीच यमन में मसीही मिशन काम करता रहा। लगभग उसी समय एक ख़ुदा को पहुंचा हुआ करामतों वाला ज़ाहिद (सन्यासी), जिसका नाम फ़ेमियून था, नजरान पहुंचा और वहां के निवासियों में ईसाई धर्म का प्रचार किया। नजरान वालों ने उसकी ओर उसके धर्म की सच्चाई की कुछ ऐसी निशानियां देखीं कि वे ईसाई धर्म की गोद में आ गिरे।[3]

फिर ज़ूनिवास की कार्रवाई की प्रतिक्रिया में सन् 525 ई० में हब्शियों ने दोबारा यमन पर क़ब्ज़ा कर लिया और अबरहा ने यमन राज्य की सत्ता अपने हाथ में ले ली, तो उसने भारी उत्साह और उमंग के साथ बड़े पैमाने पर ईसाई धर्म को फैलाने की कोशिश की। इसी उमंग और उत्साह का नतीजा था कि उसने यमन में एक काबा बनाया और कोशिश की कि अरबों को (मक्का और बैतुल्लाह से) रोक कर उसी का हज कराये और मक्का के बैतुल्लाह शरीफ़ को ढा दे, लेकिन उसकी इस जुर्रात पर अल्लाह ने उसे ऐसी सज़ा दी कि अगलों-पिछलों के लिए शिक्षा ग्रहण करने की चीज़ बन गया।

दूसरी ओर रूमी क्षेत्रों का पड़ोस होने के कारण आले ग़स्सान, बनू तग़लब, और बनू तै वग़ैरह अरब क़बीलों में भी ईसाई धर्म फैल गया था, बल्कि हियरा के कुछ अरब बादशाहों ने भी ईसाई धर्म अपना लिया था।

जहां तक मजूसी धर्म का ताल्लुक़ है, तो अधिकतर फ़ारस वालों के पड़ोसी अरबों में इसका विकास हुआ था, जैसे इराक़ अरब, बहरैन (अल-अहसा) हिज्र और अरब खाड़ी के तटीय क्षेत्र। इनके अलावा यमन पर फ़ारसी क़ब्ज़े के दौरान

---

1. इब्ने हिशाम 1/20, 21, 22, 27, 31, 35, 36, साथ ही देखिए तफ़्सीर की किताबें, तफ़्सीर सूरः बुरूज और अल-यमुन इबरुत्तारीख़ पृ० 158, 159
2. अल-यमनु इबरुत्तारीख़, 158, 159, तारीख़ुल अरब क़ब्लल इस्लाम पृ० 122, 432
3. इब्ने हिशाम, 1/31, 32, 33, 34

वहां भी एक-दो व्यक्तियों ने मजूसी धर्म अपना लिया।

बाक़ी रहा साबी धर्म, जिसकी विशेषता सितारापरस्ती, नक्षत्रों में श्रद्धा, तारों का प्रभाव और उन्हें सृष्टि का संयोजक मानना थी, तो इराक़ आदि के अवशेषों की खुदाई के दौरान जो शिला-लेख मिले हैं, उनसे पता चलता है कि यह हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की कलदानी क़ौम का धर्म था। पुराने ज़माने में शाम व यमन के बहुत से निवासी भी इसी धर्म के मानने वाले थे, लेकिन जब यहूदी मत और फिर ईसाई धर्म का ज़ोर बढ़ा तो इस धर्म की बुनियादें हिल गईं और उसका जलता चिराग़ बुझ कर रह गया, फिर भी मजूस के साथ मिल-मिलाकर या उनके पड़ोस में इराक़ अरब और अरब खाड़ी के तट पर इस धर्म के कुछ न कुछ मानने वाले बाक़ी रहे।[1]

धार्मिक स्थिति

जिस समय इस्लाम-सूर्य उदित हुआ है, यही दीन-धर्म थे जो अरब में पाए जाते थे, लेकिन ये सारे धर्म टूट-फूट के शिकार थे। मुश्रिक जिनका दावा था कि हम दीने इब्राहीमी पर हैं, इब्राहीमी शरीअत के करने, न करने के आदेश से कोसों दूर थे। इस शरीअत ने जिस नैतिकता की शिक्षा दी थी, उनसे इन मुश्रिकों का कोई ताल्लुक़ न था। उनमें गुनाहों की भरमार थी और लम्बा समय बीतने के कारण इनमें भी बुत परस्तों की वही आदतें और रस्में पैदा हो चली थीं, जिन्हें धार्मिक अंधविश्वास का पद प्राप्त है। इन आदतों और रस्मों ने उनके सामूहिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवन पर बड़े गहरे प्रभाव डाले थे।

यहूदी धर्म का हाल यह था कि वह मात्र दिखावा और दुनियादारी का नाम था। यहूदी रहनुमा अल्लाह के बजाए स्वयं रब बन बैठे थे, लोगों पर अपनी मर्ज़ी चलाते थे और उनके दिलों में आने वाले विचार और होंठों की हरकत तक का हिसाब करते थे। उनका सारा ध्यान इस बात पर टिका हुआ था कि किसी तरह माल और सत्ता प्राप्त हो, भले ही दीन बर्बाद हो जाए और नास्तिकता और अनीश्वरवाद को बढ़ावा मिलने लगे और उन शिक्षाओं के प्रति अनादर-भाव ही क्यों न जन्म ले ले, जिनकी पावनता बनाए रखने का अल्लाह ने हर व्यक्ति को आदेश दिया है और जिन पर अमल करने पर उभारा है।

ईसाई धर्म एक न समझ में आने योग्य बुत परस्ती का धर्म बन गया था।

1. तारीख़ अर्ज़ुल क़ुरआन, 2/193, 208

उसने अल्लाह और इंसान को अनोखे ढंग से मिला-जुला दिया था, फिर जिन अरबों ने इस धर्म को अपनाया था, उन पर इस दीन का कोई वास्तविक प्रभाव न था, क्योंकि उसकी शिक्षाएं उनके जीवन के असल तौर-तरीक़ों से मेल नहीं खाती थीं और वे अपने तरीक़े छोड़ नहीं सकते थे।

अरब के बाक़ी दीनों के मानने वालों का हाल मुश्रिकों ही जैसा था, क्योंकि उनके मन एक थे, मान्यताएं एक थीं और रस्म व रिवाज मिलते-जुलते थे।

अज्ञानी समाज की कुछ झलकियां

अरब प्रायद्वीप की राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के जान लेने के बाद अब यहां की सामाजिक, आर्थिक और नैतिक स्थिति की संक्षिप्त रूप-रेखा पेश की जा रही है।

सामाजिक स्थिति

अरब आबादी अनेक वर्गों पर सम्मिलित थी और हर वर्ग की स्थिति एक दूसरे से बहुत ज़्यादा भिन्न थी। चुनांचे उच्च वर्ग में मर्द-औरत का ताल्लुक़ अच्छा-भला प्रगतिवादी था। औरत को बहुत स्वतंत्रता प्राप्त थी, उसकी बात मानी जाती थी और उसका इतना सम्मान और इतनी सुरक्षा मिली हुई थी कि इस राह में तलवारें निकल पड़ती थीं और ख़ून की नदियां बह जाती थीं। आदमी जब अपनी कृपाओं और वीरताओं पर, जिसे अरब में ऊंचा स्थान प्राप्त था, अपनी प्रशंसा करना चाहता तो आम तौर पर औरत ही को सम्बोधित करता, कभी-कभी औरत चाहती तो क़बीलों को समझौते के लिए इकट्ठा कर देती और चाहती तो उनके बीच लड़ाई और रक्तपात के शोले भड़का देती, लेकिन इन सबके बावजूद, बिना किसी विवाद के मर्द ही को परिवार का मुखिया माना जाता और उसकी बात निर्णायक हुआ करती थी। इस वर्ग में मर्द और औरत का ताल्लुक़ निकाह के ज़रिए ही क़ायम होता था और यह निकाह औरत के वली (अभिभावक) की निगरानी में किया जाता था। औरत को यह हक़ न था कि वली के बिना अपने तौर पर निकाह कर ले।

एक ओर उच्च वर्ग का यह हाल था तो दूसरी ओर दूसरे वर्गों में मर्द व औरत के मेल-गिलाप की और भी कई शक्लें थीं, जिन्हें बदकारी, बेहयाई और ज़िनाकारी के अलावा कोई और नाम नहीं दिया जा सकता।

हज़रत आइशा रज़ि० का बयान है कि अज्ञानता युग में विवाह की चार शक्लें थीं—

एक तो वही शक्ल थी, जो आज भी लोगों में पाई जाती है कि एक आदमी दूसरे आदमी को उसकी निगरानी में पल रही लड़की के लिए निकाह का पैग़ाम देता, फिर मंज़ूरी के बाद मह्र देकर उससे निकाह कर लेता।

दूसरी शक्ल यह थी कि औरत जब हैज़ (माहवारी) से पाक होती, तो उसका शौहर कहता कि अमुक व्यक्ति के पास पैग़ाम भेजकर उससे उसका गुप्तांग प्राप्त करो (अर्थात ज़िना कराओ) और शौहर ख़ुद उससे अलग-थलग रहता और उसके क़रीब न जाता, यहां तक कि स्पष्ट हो जाता कि जिस व्यक्ति से गुप्तांग

प्राप्त किया गया था (अर्थात ज़िना कराया था) उससे हमल (गर्भ) ठहर गया है। जब हमल ठहर जाता तो उसके बाद अगर शौहर चाहता तो उस औरत के पास जाता। ऐसा इसलिए किया जाता था कि लड़का सज्जन और गुणों वाला पैदा हो। इस निकाह को निकाह इस्तबज़ाअ कहा जाता था (और इसी को भारत में नियोग कहते हैं)।

निकाह की तीसरी शक्ल यह थी कि दस आदमियों से कम की एक टीम इकट्ठा होती थी, सब के सब एक ही औरत के पास जाते और बदकारी करते। जब वह औरत गर्भवती हो जाती और बच्चा पैदा होता तो बच्चा जनने के कुछ दिनों बाद वह औरत सबको बुला भेजती और सबको आना पड़ता। मजाल न थी कि कोई न आए। इसके बाद वह औरत कहती कि आप लोगों का जो मामला था, वह तो आप लोग जानते ही हैं और अब मेरे गर्भ से बच्चा पैदा हुआ है और ऐ फ़्लां ! यह तुम्हारा बेटा है। वह औरत उनमें से जिसका नाम चाहती, ले लेती और वह उसका लड़का मान लिया जाता।

चौथा निकाह यह था कि बहुत से लोग इकट्ठा होते और किसी औरत के पास जाते। वह अपने पास किसी आने वाले से इंकार न करती। ये रंडियां होती थीं, जो अपने दरवाज़ों पर झंडियां गाड़े रखती थीं, ताकि यह निशानी का काम दे और जो इनके पास जाना चाहे, बे-धड़क चला जाए। जब ऐसी औरत गर्भवती होती और बच्चा पैदा होता, तो सब के सब उसके पास जमा हो जाते और क़ियाफ़ा शनास (अन्दाज़ा लगाने वाले) को बुलाते। क़ियाफ़ा शनास अपनी राय के मुताबिक़ उस लड़के को किसी भी व्यक्ति से जोड़ देता, फिर यह उसी से जुड़ जाता और उसी का लड़का कहलाता। वह इससे इंकार न कर सकता था—जब अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद सल्ल० को नबी की हैसियत से भेजा, तो अज्ञानता के सारे विवाह निरस्त कर दिए, सिर्फ़ इस्लामी निकाह बाक़ी रहा, जो आज चल रहा है।[1]

अरब में मर्द-औरत के मेल-जोल की कुछ शक्लें ऐसी भी थीं जो तलवार की धार और नेज़े की नोंक पर वजूद में आती थीं, अर्थात क़बीलेवार लड़ाइयों में विजयी क़बीला विजित क़बीले की औरतों को क़ैद करके अपने हरम में दाख़िल कर लेता था, लेकिन ऐसी औरतों से पैदा होने वाली सन्तान पूरी ज़िंदगी शर्म महसूस करती थी।

अज्ञानता-काल में बिना किसी हदबन्दी के अनेक बीवियों का रखना भी एक

---

1. सहीह बुख़ारी, किताबुन्निकाह, बाब मन क़ा-ल ला निका-ह इल्ला बिवली 2/769 व अबू दाऊद, बाब वुजूहुन्निकाह

जानी-पहचानी बात थी। लोग ऐसी दो औरतें भी निकाह में रख लेते थे जो आपस में सगी बहनें होती थीं। बाप के तलाक़ देने या वफ़ात पाने के बाद बेटा अपनी सौतेली मां से भी निकाह कर लेता था। तलाक़ देने और रुजू करने अधिकार मर्द को हासिल था और उसकी कोई सीमा न थी, यहां तक कि इस्लाम ने उनकी सीमा निश्चित कर दी।[1]

ज़िनाकारी तमाम वर्गों में चरम सीमा को पहुंची हुई थी। कोई वर्ग या इंसानों की कोई क़िस्म इसका अपवाद न थी। अलबत्ता कुछ मर्द और कुछ औरतें ऐसी ज़रूर थीं जिन्हें अपनी बड़ाई का एहसास उस बुराई के कीचड़ में लत-पथ होने से रोके रखता था। फिर आज़ाद औरतों का हाल लौंडियों के मुक़ाबले में ज़्यादा बेहतर था। असल मुसीबतें लौंडियां ही थीं और ऐसा लगता है कि अज्ञानियों का अधिसंख्य इस बुराई में लिप्त होने से कोई संकोच भी नहीं महसूस करता था, चुनांचे सुनने अबू दाऊद आदि में रिवायत है कि एक बार एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि ऐ अल्लाह के रसूल सल्ल० ! अमुक व्यक्ति मेरा बेटा है। मैंने अज्ञानता-युग में इसकी मां से ज़िना किया था। अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, इस्लाम में ऐसे दावे की कोई गुंजाइश नहीं, अज्ञानता की बात खत्म हो गई, अब तो लड़का उसी का होगा, जिसकी बीवी या लौंडी हो और ज़िनाकार के लिए पत्थर है और हज़रत साद बिन अबी वक़्क़ास रज़ि० और अब्द बिन ज़मआ के दर्मियान ज़मआ की लौंडी के बेटे—अब्दुर्रहमान बिन ज़मआ के बारे में जो झगड़ा पेश आया था, वह भी जाना-पहचाना और मालूम है।[2]

अज्ञानता-युग में बाप-बेटे का ताल्लुक़ भी अनेक प्रकार का था। कुछ तो ऐसे थे, जो कहते थे—

'हमारी सन्तान हमारे कलेजे हैं, जो धरती पर चलते-फिरते हैं।'

लेकिन दूसरी ओर कुछ ऐसे भी थे जो लड़कियों को रुसवाई और ख़र्च के डर से ज़िंदा ज़मीन में गाड़ देते थे और बच्चों को भुखमरी के भय से मार डालते थे।[3]

लेकिन यह कहना कठिन है कि यह ज़ुल्म बड़े पैमाने पर चल रहा था,

---

1. अबू दाऊद नुसख़ुल मुराजअः बादत्ततलीक़ातिस्सलास, साथ ही कुतुबे तफ़्सीर 'अत्तलाक़ु मर्रतान'
2. सहीह बुख़ारी 2/999, 1065, अबू दाऊद अल-वलदु लिल फ़राश, मुस्नद अहमद 2/206
3. क़ुरआन मजीद : 6/101-16/58, 59-17/31-81/8

क्योंकि वे अपने शत्रु से अपनी रक्षा के लिए दूसरों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा सन्तान की ज़रूरत महसूस करते थे और इसका एहसास भी रखते थे।

जहां तक सगे भाइयों, चचेरे भाइयों और कुंबे-क़बीले के लोगों के आपसी ताल्लुक़ात का मामला है, तो ये अच्छे भले पक्के और मज़बूत थे, क्योंकि अरब के लोग क़बीलेवार पक्षपात ही के सहारे जीते और उसी के लिए मरते थे। क़बीले के भीतर आपसी सहयोग और सामूहिकता की भावना पूरी तरह काम कर रही होती थी, जिसे पक्षपाती भावना और अधिक जगाए रखती थी। सच तो यह है कि क़ौमी लगाव और रिश्ते-नाते का ताल्लुक़ ही उनकी सामूहिक व्यवस्था की बुनियाद थी। वे लोग इस कहावत के शब्दों पर पूरी तरह अमल कर रहे थे कि 'अपने भाई की मदद करो, चाहे वह ज़ालिम हो या मज़्लूम' इस कहावत के अर्थ में अभी वह सुधार नहीं हुआ था जो बाद में इस्लाम द्वारा किया गया अर्थात ज़ालिम की मदद यह है कि उसे ज़ुल्म से रोका जाए, अलबत्ता बुज़ुर्गी और सरदारी में एक दूसरे से आगे निकल जाने की भावना बहुत बार एक ही व्यक्ति से वजूद में आने वाले क़बीलों के बीच लड़ाई की वजह बन जाया करती थी, जैसा कि औस व ख़ज़रज, अबस व ज़ुबयान और बिक्र व तग़लब आदि की घटनाओं में देखा जा सकता है।

जहां तक विभिन्न क़बीलों के एक दूसरे से ताल्लुक़ात का मामला है, तो ये पूरी तरह खंडित थे। क़बीलों की सारी ताक़त एक दूसरे के ख़िलाफ़ लड़ने में ख़त्म हो रही थी, अलबत्ता दीन और अंधविश्वास की मिलावट से तैयार हुए कुछ रस्म व रिवाज और आदतों की वजह से कभी-कभी लड़ाई की गर्मी और तेज़ी में कमी आ जाती थी और कुछ हालात में समझौते और ताबेदारी के नियमों पर विभिन्न क़बीले इकट्ठे हो जाते थे। इनके अलावा हराम महीने उनके जीवन के लिए और रोज़ी-रोटी हासिल करने में पूरी तरह सहायक थे क्योंकि अरब उनके सम्माननीय होने पर बहुत ध्यान देते थे। अबू रजा अतारदी कहते हैं कि जब रजब का महीना आ जाता तो हम कहते कि यह नेज़े की अनियां उतारने वाला है। चुनांचे हम कोई नेज़ा न छोड़ते, जिसमें धारदार बरछी होती, मगर हम वह बरछी निकाल लेते। और कोई तीर न छोड़ते, जिसमें धारदार फल होता, मगर उसे भी निकाल लेते और रजब भर उसे कहीं डालकर पड़ा छोड़ देते।[1] इसी तरह हराम के बाक़ी महीनों में भी।[2]

1. बुख़ारी हदीस न॰ 4376,
2. फ़त्हुल बारी 8/91

सार यह कि सामूहिक दशा कमज़ोरी और बेसूझ-बूझ के गढ़े में गिरी हुई थी, अज्ञान अपनी कमानें ताने हुए था और अंधविश्वास का दौर-दौरा था। लोग जानवरों जैसी ज़िंदगी गुज़ार रहे थे। औरत बेची और ख़रीदी जाती थी और कभी-कभी उससे मिट्टी और पत्थर जैसा व्यवहार किया जाता था। क़ौम के आपसी ताल्लुक़ात कमज़ोर, बल्कि टूटे हुए थे और राज्यों की सारी गतिविधियां अपनी जनता से ख़ज़ाने भरने या विरोधियों पर हमला कर देने तक सीमित थीं।

आर्थिक स्थिति

आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति के आधीन थी। इसका अन्दाज़ा अरब के आर्थिक साधनों पर नज़र डालने से हो सकता है कि व्यापार ही उनके नज़दीक जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन था और मालूम है कि व्यापार के लिए आना-जाना देश में शान्ति के बिना संभव नहीं और अरब प्रायद्वीप का हाल यह था कि हराम महीनों के अलावा शान्ति का कहीं वजूद न था। यही वजह है कि सिर्फ़ हराम महीनों ही में अरब के मशहूर बाज़ार उक़ाज़, ज़िल मजाज़ और मजिन्ना वग़ैरह लगते थे।

जहां तक उद्योगों का मामला है तो अरब इस मैदान में सारी दुनिया से पीछे थे। कपड़े की बुनाई और चमड़े की सफ़ाई आदि की शक्ल में जो कुछ उद्योग पाए भी जाते थे, वे अधिकतर यमन, हियरा और शाम से मिले हुए क्षेत्रों में थे, अलबत्ता अरब के भीतरी भागों में खेती-बाड़ी और जानवरों के चराने का कुछ रिवाज था। सारी अरब औरतें सूत कातती थीं, लेकिन मुश्किल यह थी कि सारा माल व मता हमेशा लड़ाइयों के निशाने पर रहता था। भुखमरी आम थी और लोग ज़रूरी कपड़ों और पहनावों से भी बड़ी हद तक महरूम रहते थे।

चरित्र

यह तो अपनी जगह तै है कि अज्ञानता-युग में घटिया और ओछी आदतें और बुद्धि व विवेक के ख़िलाफ़ बातें पाई जाती थीं, लेकिन उनमें ऐसे पसंदीदा उच्च आचरण भी थे, जिन्हें देखकर इंसान दंग रह जाता है, जैसे—

1. **दया-भाव और दानशीलता**—यह अज्ञानियों की ऐसी विशेषता थी, जिसमें वे एक दूसरे से आगे निकल जाने की कोशिश करते थे और इस पर इस तरह गर्व करते थे कि अरब का आधा काव्य साहित्य उसी की भेंट चढ़ गया है। इस गुण के आधार पर किसी ने ख़ुद अपनी प्रशंसा की है, तो किसी ने किसी

और की। हालत यह थी कि कड़े जाड़े और भूख के ज़माने में किसी के घर कोई मेहमान आता और उसके पास अपनी उस एक ऊंटनी के अलावा कुछ न होता जो उसकी और उसके परिवार का मात्र साधन होती, तो भी—ऐसी संगीन हालत के बावजूद—उस पर दानशीलता छा जाती और उठ कर अपने मेहमान के लिए अपनी ऊंटनी ज़िब्ह कर देता। उनके दया-भाव का ही नतीजा था कि वे बड़ी-बड़ी दियत और माली ज़िम्मेदारियां उठा लेते और इस तरह दूसरे रईसों और सरदारों के मुक़ाबले में इंसानों को बर्बादी और ख़ून बहाने से बचाकर एक प्रकार के गर्व का अनुभव करते थे।

इसी दया-भाव का नतीजा था कि वे मदिरा पान पर भी गर्व करते थे, इसलिए नहीं कि यह अपने आप में कोई गर्व की बात थी, बल्कि इसलिए कि यह दया-भाव और दानशीलता को आसान कर देती थी, क्योंकि नशे की हालत में माल लुटाना मानव-स्वभाव पर बोझ नहीं होता। इसलिए ये लोग अंगूर के पेड़ को करम (दया) और अंगूर की शराब को बिन्तुल करम (दया की बेटी) कहते थे। अज्ञानता-युग की काव्य साहित्य पर नज़र डालिए तो यह प्रशंसा और गर्व का एक महत्वपूर्ण अध्याय दिखाई पड़ेगा। अन्तरा बिन शद्दाद अबसी अपने मुअल्लक़ा में कहता है—

'मैंने दोपहर की तेज़ी रुकने के बाद एक पीले रंग के धारीदार बिल्लोरी जाम से, जो बाईं ओर रखे हुए चमकदार और मुंहबंद जग के साथ था, निशान लगी हुई पाक चमकदार शराब पी और जब मैं पी लेता हूं तो अपना माल लुटा डालता हूं, लेकिन मेरी आबरू भरपूर रहती है, उस पर कोई चोट नहीं आती। और जब मैं होश में आता हूं, तब भी दानशीलता में कोताही नहीं करता और मेरा चरित्र व आचरण जैसा कुछ है, तुम्हें मालूम है।'

उनके दया-भाव ही का नतीजा था कि वे जुआ खेलते थे। उनका विचार था कि यह भी दानशीलता का एक रास्ता है, क्योंकि उन्हें जो लाभ मिलता या लाभ प्राप्त करने वालों के हिस्से से जो कुछ ज़्यादा बचा रहता, उसे मिस्कीनों (दीन-दुखियों) को दे देते थे। इसीलिए क़ुरआन ने शराब और जुए के लाभ का इंकार नहीं किया, बल्कि यह फ़रमाया कि—

'इन दोनों का गुनाह उनके लाभ से बढ़कर है।' (2 : 219)

2. वचन का पालन—यह भी अज्ञानता-युग के उच्च चरित्र में से है। वचन को उनके नज़दीक दीन (धर्म) की हैसियत हासिल थी, जिससे वे बहरहाल चिमटे रहते थे और इस राह में अपनी औलाद का ख़ून और अपने घर-बार की तबाही को भी कुछ नहीं समझते थे। इसे समझने के लिए हानी बिन मसऊद शैबानी,

समवाल बिन आदिया और हाजिब बिन ज़रारा की घटनाएं पर्याप्त हैं।[1]

3. स्वाभिमान—स्वाभिमान पर स्थिर रहना और ज़ुल्म और जब्र सहन न करना भी अज्ञानता के जाने-पहचाने चरित्र में से था। इसका नतीजा यह था कि उनकी वीरता और स्वाभिमान सीमा से बढ़ा हुआ था। वे तुरन्त भड़क उठते थे और छोटी-छोटी बात पर, जिससे अपमान की गंध आती, तलवारें खींच लेते और बड़ी ही ख़ूनी लड़ाई छेड़ देते। उन्हें इस राह में अपनी जान की कदापि परवाह न रहती।

4. जो कह देते, वह कर बैठते—अज्ञानियों की विशेषता यह भी थी कि जब वे किसी काम को अपनी बड़ाई का ज़रिया समझकर अंजाम देने पर तुल जाते, तो फिर कोई रुकावट उन्हें रोक न सकती थी, वे अपनी जान पर खेल कर उस काम को अंजाम दे डालते थे।

5. सहनशीलता और गम्भीरता—यह भी अज्ञानता-युग के लोगों के नज़दीक एक बड़ा गुण था, पर यह उनकी हद से बढ़ी हुई वीरता और लड़ाई के लिए हर वक़्त तैयार रहने की आदत की वजह से कम पाया जाता था।

6. बदवी सादगी—यानी सभ्यता की गन्दगियों और दांव-पेंच का न जानना और उनसे दूरी। इसका नतीजा यह था कि उनमें सच्चाई और अमानतदारी पाई जाती थी। वे धोखाधड़ी और वायदों के पूरा न करने से दूर रहते और इन चीज़ों से नफ़रत करते थे।

---

1. हानी बिन मस्ऊद की घटना हियरा की बादशाही के तहत गुज़र चुकी है। समवाल की घटना यह है कि इमरउल क़ैस ने उसके पास कुछ ज़िरहें अमानत के तौर पर रख छोड़ी थीं। हारिस बिन अबी शिम्र ग़स्सानी ने उन्हें उससे लेना चाहा। उसने इंकार कर दिया और तीमा में अपने महल के अन्दर क़िला बन्द हो गया। समवाल का एक बेटा क़िला से बाहर रह गया था। हारिस ने उसे गिरफ़्तार कर लिया और ज़िरहें न देने की शक्ल में क़त्ल की धमकी दी, पर समवाल इंकार पर अड़ा रहा। आख़िर हारिस ने उसके बेटे को उसकी आंखों के सामने क़त्ल कर दिया।

हाजिब की घटना यह है कि उसके इलाक़े में अकाल पड़ा। उसने किसरा से उसकी अमलदारी की सीमा में अपनी क़ौम को ठहरने की इजाज़त चाही। किसरा को उनके फ़साद का डर हुआ, इसलिए ज़मानत के बग़ैर मंज़ूर न किया। हाजिब ने अपनी कमान रेहन रख दी और वायदे के मुताबिक़ अकाल समाप्त होने पर अपनी क़ौम को वापस ले गया और उनके बेटे हज़रत अतारिद बिन हाजिब रज़ियल्लाहु अन्हु ने किसरा के पास जाकर बाप की अमानत वापस तलब की, जिसे किसरा ने उनकी वफ़ादारी को देखते हुए वापस कर दिया।

हम समझते हैं कि अरब प्रायद्वीप को सारी दुनिया से जो भौगोलिक संबंध था, उसके अलावा यही वे मूल्यवान गुण थे, जिनकी वजह से अरबों को मानव-जाति का नेतृत्व करने और आम लोगों के लिए रिसालत का बोझ उठाने के लिए चुना गया, क्योंकि ये चरित्र यद्यपि कभी-कभी फ़साद और बिगाड़ का कारण बन जाते थे और इनकी वजह से दुखद घटनाएं घट जाती थीं, लेकिन ये अपने आप में बड़े मूल्यवान गुण थे, जो थोड़ा सा सुधरने के बाद मानव-समाज के लिए बड़े ही उपयोगी बन सकते थे और यही काम इस्लाम ने अंजाम दिया।

शायद इन गुणों में भी वायदों का पूरा करना, उसके बाद स्वाभिमान और 'जो कह देते वह कर बैठते' सरीखे गुण सबसे ज़्यादा मूल्यवान गुण थे, क्योंकि महान शक्ति और दृढ़ संकल्प के बिना बिगाड़ और फ़साद का अन्त और न्याय-व्यवस्था की स्थापना संभव नहीं।

अज्ञानता-युग के लोगों के कुछ और भी अच्छे गुण थे, लेकिन यहां सबका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है।